अँधेरे के जुगनू

डा० रांगेय राघव

किताब महल, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९५३

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए जीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७ जीरो रोड, इलाहाबाद।

भूमिका

कुछ दिन हुए, एक सज्जन ने कहा था कि इतिहास पर लिखना पलायनवाद है। यह वास्तव में उत्तरदायित्वहीन बात है। इतिहास की वास्तविकता, वर्गसंघर्ष का यथार्थ, अतीत के मोह को दूर करना, दार्शनिकता का विकास, उसका आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होने का प्रदर्शन, अतिराष्ट्रीयतावाद और सनातनवाद पर आघात करना, क्या यह सब पलायन है ? मार्क्स को रट लेना ही काफी नहीं है। सामाजिक यथार्थ की अविच्छिन्न श्रृंखला को देखना संस्कृति की विरासत को ग्रहण करना है।

मैंने कभी मार्क्सवाद को इतिहास पर ठूँसा नहीं। अंतर्विरोधों को दिखाकर, तत्कालीन समाज के प्रगतिमय तत्त्वों को प्रदर्शित करना ही मेरा ध्येय रहा है।

मैंने अपनी 'प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास' के आधार पर ही, अपने विश्लेषण के फलस्वरूप, यह रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने महाजानपद युग से भी पुराने समय का चित्रण किया है। यह वह समय है जब पार्श्वनाथ से पूर्व ही व्यापक गणतन्त्र स्थापित करने का यत्न हो रहा था। अपनी अन्य ऐतिहासिक रचनाओं की भाँति इस उपन्यास की कथावस्तु तथा काल ऐसे हैं जिन पर दृष्टि साधारणतया नहीं जाती, और जो प्रायः अंधकार युग कहलाते हैं। इस पुस्तक में दास प्रथा की रक्षा के लिए, कुलीन वर्णों ने एकतन्त्र हटाकर, कैसे गणतन्त्र स्थापित किया, यह चित्रित किया गया है। वास्तव में लिच्छवि आदि गण का मूलाधार यही था। 'मुर्दों का टीला' में मैंने आर्यों से पूर्व का भारत चित्रित किया था। उसमें मैंने कुलगणों का नाश दिखा

कर सर्वशक्तिमान राजा का उदय दिखाया था। ध्यान रहे, तब की और अब की परिस्थिति में बहुत भेद था। तब दास प्रथा जर्जर नहीं हुई थी। शासकों में बल था और फिर विदेशी आर्य आ रहे थे। अब ब्राह्मण पतित हो रहा था, आर्य शक्ति क्षीण हो रही थी। रक्तगर्व और धनस्वार्थ के पीछे वर्णों ने अंतिम यत्न किया।

यह गण उच्च वर्णों के, प्रयत्न थे। ब्राह्मण विरोधी थे। ब्राह्मण ने इन्हें अंत में पराजित किया और क्षत्रियों और वैश्यों को दबाने के लिए नये शासन में दासों को अधिकार दिये थे। यह वह समय है जब दास उत्पादन के साधन हैं। ब्राह्मणों ने साम्राज्य बसाया, सामंतकाल का उदय हुआ, कृषकों के सर्फ़ बनने के साथ; और दास तब उत्पादन के साधन नहीं रहे, घरेलू दास रह गये। बर्बर (दास) युगीन समाज का यह संघर्ष ब्राह्मणों और बौद्धों में कहीं स्पष्ट चित्रित नहीं है क्योंकि वे सब उच्च वर्णों के रखवालों द्वारा लिखित पुस्तकें हैं।

वर्णव्यवस्था इसी युग में बदल गई। पहले जहाँ आर्य केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य होते थे, इस युग में यहाँ के नाग, राक्षस आदि निवासियों का समाज भी अंतर्मुक्त हो गया।

जब दास प्रथा को रखने की आवश्यकता हुई तो आर्थिक कारणों से—पुजारी, योद्धा, वैश्य (व्यापारी) तथा शूद्र (कमकर)—यह चार वर्ग बने जो सामन्तकाल के आधार थे। बर्बर व्यवस्था की दास प्रथा का लड़खड़ाना ऐसा कारण हुआ कि अन्य अनार्यों के पुजारी आर्य पुजारी (ब्राह्मण) तथा योद्धा योद्धाओं (क्षत्रियों) में, व्यापारी (वैश्यों) व्यापारियों में तथा शूद्र (कमकरों) शूद्रों में मिल गये। आज भी यह चेष्टा भारत में है। नाई न्यायीठाकुर और कोली तन्तुवाय वैश्य तथा बढ़ई लोग ब्राह्मण बनते हुए दिखाई देते हैं। राजस्थान के बागड़ा अब अपने को ब्राह्मण कहते हैं। परन्तु आज का यह प्रयत्न समाज में अपना स्थान उठाने के प्रयत्न में है, उस समय की अंतर्मुक्ति आर्थिक स्वार्थ के कारण थी।

महाभारत के बाद अंतर्मुक्ति के परिणामस्वरूप ही हमें चाणक्य और मौर्यकाल में यही चार वर्ण मिलते हैं। इस समय भारशिवनागों को लीजिए। वे नाग अलग नहीं थे। चातुर्वर्ण्य के अन्तर्गत थे। राक्षस आदि जातियाँ लुप्त हो गईं। अंततोगत्वा आभीर भी कुछ क्षत्रियों में अंतर्मुक्त हुए, कुछ अहीर कहलाये, पर उन्हें राजपूतों का सा ही योद्धा माना गया। यह अंतर्मुक्ति की विराट उथल-पुथल का समय इतिहास का एक विशेष युग है। इस अंतर्मुक्ति को ब्राह्मण रोकना चाह कर भी न रोक सका। वैश्य धनी हो चले थे। क्षत्रिय ब्राह्मण-विरोधी थे। उस समय क्षत्रियों ने कुलगर्व और रक्तगर्व की रक्षा की—गण बनाकर, पर वे अधिक नहीं चले, कुछ ही शताब्दियों में सामंतकाल आया और जातियों का विराट समूह चातुर्वर्ण्य में समा गया। आज भी एक-एक वर्ण में असंख्य उपजातियाँ हैं। 'आर्य' पहले रक्तगर्वी त्रिवर्ण का द्योतक था परन्तु कौटिल्य के समय में दास भी धन देकर 'आर्य' बन सकते थे, 'आर्य' रोम के 'नागरिक' का पर्याय सा हो गया। गणों में दास प्रथा थी। बुद्ध और पार्श्वनाथ के पहले भी अनेक श्रमण सम्प्रदाय ब्राह्मण-विरोधी थे।

प्रस्तुत समय उपनिषद काल के बाद का है। जनक की मिथिला और रघुकुल का स्थान भी उच्च वर्ग गणों ने ले लिया था। यही मैंने पुस्तक में प्रदर्शित किया है कि गणों की वास्तविकता का विकास कैसे हुआ।

इन गणों का नाश करके सामन्तवादी शक्ति का उदय हुआ। सामंतवाद भी एक समय समाज में एक प्रगति लाया था, परन्तु उसके भी अनेक अंतर्विरोध थे। उसके शोषण के आधार दूसरे थे। शोषण के आधार अपने आप नहीं बदलते। वे उत्पादन के साधन बदलने पर बदलते हैं, या फिर व्यापार के संतुलन बदलने पर परिवर्तित होते हैं।

एक समय था आर्यों के तीन वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे। उन्होंने यहाँ (भारत में) आकर अनेक जातियाँ पाईं। जो जातियाँ सभ्य

थीं और उनसे दबीं नहीं, वे तो अपने नाम से विख्यात रहीं, पर जो लोग हार गये उन्हें उन्होंने दास बना लिया। वैश्य जो आर्यों का तीसरा वर्ण था, वह आर्यों का जन समूह था। वह पहले आर्यों का शोषित कमकर वर्ग था, पर जब काम करने को दास मिल गये, तो वह वैश्य वर्ग उसके ऊपर हो गया और उसके परिश्रम के बल पर पलने लगा। उस समय फिर भी वैश्यों को अधिक अधिकार नहीं थे। परन्तु उनका दर्जा बढ़ गया था। अब 'विश' अर्थात् जन समाज की स्त्री का छोड़कर दासी को भोगा जाने लगा। पहले विश पर दोनों ऊँचे वर्णों का कितना अधिकार था यह इसी से प्रकट है कि वेश्या शब्द भी विश धातु से बना है। परन्तु इतने दासों को, (जो निरन्तर आर्यों की बढ़ती जीतों के साथ बढ़ते जा रहे थे) उत्पादन का साधन बनाने में आर्यों को एक नुकसान था। वह नुकसान था कि जब दास के जीवन-मरण पर अपना अधिकार था, तब उसे पशु की भाँति खाना भी देना पड़ता था। यह खर्चीली चीज थी। फिर दास भी तो कब तक सहते। इस सबके परिणामस्वरूप आर्य त्रिवर्णों ने खेतिहर दास को खेती पर छोड़ा। कुछ दासों को वैसा ही रखा, पर जो दास अपने लिए नित्य के काम के लिए आवश्यक नहीं थे उन्हें अपने आप खाने-कमाने को कुछ स्वतन्त्रता दी (या दासों ने प्राप्त की) और इधर उच्चवर्णों का आर्थिक लाभ हुआ, उधर शूद्र की संज्ञा देकर उन दासों को समाज का पाँव मान लिया गया।

यह ढाँचा काफी दिन चला। आर्य जातियाँ अनार्य जातियों से लड़ती रहीं। महाभारत युद्ध के बाद जब आर्य जातियों की शक्ति घट गई प्रस्तुत उपन्यास उसी काल का चित्रण है। मेरे मतानुसार महाभारत युद्ध १५०० ई० पू० से २००० ई० पू० के बीच कभी हुआ। बुद्ध का समय लगभग ६०० ई० पू० है। बुद्ध के समय अनेक गण खूब फली-फूली हालत में थे। इस उपन्यास में मैंने पाणिनि सूत्रकार के हिसाब से समय निकाला है। वह लगभग बुद्ध से १०० बरस पहले हुआ। उसके

समय में संस्कृत खूब मँज कर बँध गई। तो भाषा का वह परिष्कार कम से कम चार पाँच सौ वर्षों में आया होगा। उस समय भी जन भाषा पालि थी। यह काल महाभारत के ७ सौ या ८ सौ वर्ष बाद और बुद्ध से चार पाँच सौ साल पहले का चित्रण है।

हम ऊपर बता चुके हैं कि कुल गणों ने दास प्रथा को जीवित रखने की चेष्टा की और फिर सामन्तवाद का उदय हुआ। याद रखना होगा कि यह सामन्तवाद लाने में ब्राह्मणों का काफी हाथ रहा। कैसे ? वह इस प्रकार—क्षत्रिय ब्राह्मण-विरोधी थे और उस वर्ण के आधिपत्य को समाप्त करना चाहते थे, उन विशेषाधिकारों के विरोधी थे जो ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त थे—जैसे अबध्य होना, भूमि का कर न देना, उनकी संपत्ति पर क्षत्रिय का अधिकार न होना। क्षत्रियों ने पहले जब छीनने की कोशिश की थी तब ब्राह्मणों और क्षत्रियों के भीषण युद्ध हुए थे। अंत में वैश्य और शूद्रों को दबाये रखने को संधि हो गई थी। अब क्षत्रियों का विद्रोह पहले से कहीं बड़ा था। वैश्य भी ब्राह्मण-विरोधी थे क्योंकि जैसे-जैसे व्यापार बढ़ता जाता था, वे धन प्राप्त करते जाते थे और उनकी शक्ति बढ़ती जा रही थी।

प्रस्तुत उपन्यास में वैश्य और क्षत्रियों के वे प्रयत्न हैं जो उन्होंने ब्राह्मणों की सर्वाधिकारी सत्ता को समाप्त करने में लगाये थे।

परन्तु इसके बाद ही बात बदली। एक तो दास स्वयं विक्षुब्ध थे, उधर शूद्रों ने तो महाभारत युद्ध के बाद ही संपत्ति एकत्र करने की शक्ति पा ली थी, इधर ब्राह्मण को क्षत्रियों ने इन गणों में समाप्त कर देने की चेष्टा की थी। इसी विद्वेष के कारण ब्राह्मणों ने गणों को अधम कहा है, या नाम तक नहीं लिया। ब्राह्मण को गणों से भयानक खतरा था। तीसरा वर्ण वैश्य धन का पुजारी था। वह तो व्यापारी वर्ग था। उसे तो लाभ से मतलब था। कुलगणों में श्रेणियाँ अर्थात् गिल्ड थीं। इन श्रेणियों में कमकर थे। उन कमकरों के नीचे दास थे, जिनसे वे बेपैसे की सी ही

बेगार लेते थे। इससे उनको लाभ अधिक होता था। पर दासों को यह दोनों वक्त पशु की भाँति खाना देना नुकसान की चीज थी। क्षत्रिय को दास चाहिये थे युद्ध में सहायता के लिए, घर का काम करने को। वैश्य को लाभ था ठेके पर काम कराने में। जितना काम करो उतना पैसा ले जाओ। व्यर्थ क्यों पाला जाये। जब यह परिस्थिति थी तब वैश्य को व्यापार के बढ़ने के साथ बड़े-बड़े राजों की भी आवश्यकता थी। छोटे कुलगणों में रक्तगर्व का वैमनस्य था। जगह-जगह राज्य सीमाओं पर कर ग्रहण किया जाता था; दूसरे, दो राज्यों की सीमा पर डकैतों का भय था। इन आर्थिक कारणों ने उसे मजबूर किया कि वह दास प्रथा में ढील दे। उधर ब्राह्मण ने लाभ उठाया। जिस समय विदेशी यवनों ने आक्रमण किया, उसने उस क्षत्रिय वर्ग को साथ लिया, जो उसको अपने ऊपर मानने को तत्पर था, और 'संस्कृति और देश अब विदेशी संस्कृति और लुटेरों के खतरे में हैं' कहकर, उसने दास प्रथा को और भी तोड़ा, ताकि क्षत्रिय-विरोध खत्म हो जाय। हाँ व्यापारियों के लिए ब्राह्मणवर्ग ने बड़े-बड़े राज्य बनाकर सुविधा पैदा कर दी। इस प्रकार दास प्रथा टूट गई। पहले जो दास उत्पादन के साधन थे, वे अब पारिवारिक दास मात्र बच रहे। श्रेणियों (गिल्डों) में धन देकर या लेकर, स्वतन्त्रता या 'आर्यत्व' क्रय-विक्रय की वस्तु रह गई। 'काम पूरा नहीं किया, तो तुमको दास बना कर काम ले लिया जायगा।' यों दास प्रथा बच रही।

गौतम बुद्ध तो कुलगणों में पैदा हुए थे। वे कुलगण रक्तगर्व के सहारे थे, विचार-स्वातन्त्र्य उनमें प्रचलित था, अर्थात् वे ब्राह्मण वर्ग को सर्वोपरि नहीं मानते थे। दास प्रथा थी। वैश्य खूब व्यापार कर रहे थे। यह वह युग था जब श्रेणियाँ (गिल्डों) में दासों को ठेके पर रखा जाने लगा था। वैश्य बड़े राज्य चाहते थे। केवल क्षत्रियों की शक्ति का ऊपरी दिखावा था। उसे तत्कालीन उगते सामंतवाद के प्रतिनिधियों ने शीघ्र ही तोड़-फोड़ दिया। बुद्ध ने कोशिश की थी, गण में जो समानता रक्त

और जन्म के बल पर है, उसे नीच जातियों में भी फैलाया जाय, क्योंकि बुद्ध उसकी असलियत को समझ गये थे। पर जिस रूप में बुद्ध वह स्वतंत्रता चाहते थे, वह दास, स्त्री, ऋण के सम्बन्ध में नहीं चली। गणों में भी नहीं, उगते सामंतवाद में भी नहीं। बुद्ध का धर्म तो तभी पराजित हो गया। सामंतों के लिए बौद्ध धर्म की अहिंसा का बाना अच्छा ढकोसला था। सो उन्होंने उसे ओढ़ लिया। पुरानी अनार्य जातियाँ भी अपना प्रभाव रखती थीं। बुद्ध के बाद उन्होंने भी सिर उठाया। इतना सिर उठाया कि इधर दासों को मुक्ति मिलने लगी, उधर शूद्र नन्द मगध के शासक बन बैठे। तब क्षत्रियों को भय लगा। ब्राह्मण से मिलकर क्षत्रियों ने फिर शूद्रों को दबाया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि समाज में वर्ण (अर्थात् वर्ग) अपने आर्थिक स्वार्थों की धुरी पर घूमते थे। आवश्यकता के अनुसार परिस्थिति बदला करती थी। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ग्रीक जब भारत में आये थे तब यहाँ यवनों की सी दास-प्रथा नहीं थी। दास घरेलू लोग थे। यह ठीक है। यहाँ तो यह प्रथा तब तक कभी की समाप्त हो चुकी थी। तो यवन उसे यहाँ कैसे देख पाते।

कृष्ण ने पहले गणगोत्रों के स्थान पर 'राज्य' (State) को सर्वोपरि कहा था। कृष्ण की इच्छा थी एक राष्ट्र बने जिसमें आधिपत्य आर्यों का हो। पर वह स्वेच्छाचारी एकतंत्र के विरुद्ध थे क्योंकि स्वयं गणतंत्र के व्यक्ति थे। वे चाहते थे कि एकराष्ट्र बने, पर शूद्रों को भी अधिकार प्राप्त हों। मूलतः कृष्ण में दुःखवाद है; गीता का व्यूहवाद परवर्त्ती है। और उसी से गीता को आधुनिक रूप मिला है। कृष्ण ने समाज में सब ओर ह्रास देखा है। यही उनके विराट पुरुष का रूप है कि वह केवल संहार रूप में प्रगट हुआ है। कृष्ण ने कर्मवाद को मानकर तत्कालीन दास प्रथा को तो रखा, परंतु भक्तिवाद मानकर उन्हें उठने की भी प्रेरणा दी। कृष्ण का स्वप्न चाणक्य ने एक राष्ट्र बनाकर पूरा किया। कृष्ण एक राष्ट्र चाहते थे

जातिवाद 'आर्य' के आधार पर। परंतु आर्थिक प्रश्न जातिवाद से विचलित नहीं होता, कुछ देर को झिलमिल सी भले ही आँखों को चौंधिया जाय। कृष्ण चाहते थे ब्राह्मणों का विरोध छोड़ कर क्षत्रिय 'एकराष्ट्र' बनायें। परंतु क्षत्रिय उस समय अपने से ऊपर के वर्ग—ब्राह्मण को गिराने में लगे थे और दूसरी ओर दास प्रथा भी चाहते थे।

चाणक्य के समय में जो विशाल साम्राज्य देश की रक्षा के नाम पर चंद्रगुप्त ने स्थापित किया, उसका आधार मूलतः आर्थिक था। व्यापारियों को सचमुच एक बहुत बड़ा राज्य चाहिये था, व्यापार अर्थात् आर्थिक व्यवस्था को एक सुव्यवस्था की आवश्यकता थी। भारत का व्यापार तब मध्य एशिया तथा चीन से ही नहीं, समुद्र पर पश्चिम और पूर्व में जावा, सुमात्रा तक चलता था। यह बड़े साम्राज्यों का युग भारत में तभी तक रहा, जब तक व्यापार यहीं के वैश्यों के हाथ में रहा। हर्षवर्द्धन के युग के बाद बड़े साम्राज्य समाप्त हो गये। प्रश्न उठता है, क्यों? इसका कारण है भारत में असंख्य जातियाँ इस दौर में घुस आई थीं। इधर जब उन्हें आत्मसात् किया जा रहा था, उधर अरबों ने समुद्र व्यापार छीन लिया और उत्तर का व्यापार भी हाथ से छिन सा गया। इस व्यापार के छिनने से व्यवस्था पर संकोच (rigidity) आया और यहाँ के उच्चवर्ण फिर इस्लाम के आने पर खतरे में पड़ गये। इसी बीच दक्षिण में भागवत संप्रदाय ने बराबरी की उठती हिलोर में पड़े शूद्रों (अर्थात् कमकरों) को सहायता दी, बौद्ध और अवैदिक शैव संप्रदायों ने बंगाल और पूर्व के शूद्रों (कमकरों) को उठाया और निम्न जातियों, अर्थात् शूद्रों (कमकरों) ने फिर सिर उठाया क्योंकि अब ब्राह्मण और राजपूत (क्षत्रियवर्ग) का उत्पीड़न बढ़ गया था, क्योंकि विदेशी आक्रमणों से रक्षा करने का बहाना जाता रहा। हूणों के बाद आक्रमण बंद जो हो गये थे।

इस्लाम ने आकर धर्म की आड़ में आर्थिक लूट की। धर्म गौण था,

धन मुख्य था। यहाँ दो बातें इस्लाम के सम्बन्ध में भी कह देना अनुचित न होगा। अरब में कबीले बसते थे। पैगम्बर मुहम्मद ने उनके छोटे-छोटे देवताओं को हटाकर एक अल्लाह दिया, जिसका व्यापक रूप था—इतना व्यापक था कि वह छोटे-छोटे देवताओं के संकोचों में से एक भी न था। व्यापार के लाभ के लिए कबीलों ने भ्रातृत्व के द्वारा एक नेशन (राष्ट्र) बनाया और पहले जो लूट वे आपस में करते थे, उसे मिटाया। दासों और स्त्रियों को भी पैगम्बर ने कुछ रियायतें दीं। और जो कबीले आपस में लूटते-खसोटते थे, अब वे एक होकर बराबरी हासिल कर, दूसरों को लूटने लगे। शीघ्र ही वे सब पर फैल गये। परन्तु जब कबीलों का नया राष्ट्र बाद में ईरान और इराक की सामंतशाही सभ्यता से मिला, उन सभ्यताओं से मिला, जिनका सैकड़ों वर्षों का विकास उन्हें सामंतीय व्यवस्था तक लाया था, तो इस्लाम का भाईचारे का नारा ऊपरी बना रहा। उसने ईरान की सामंतीय व्यवस्था को नहीं छेड़ा। भारत में वे जब तक लूटने आते रहे, उन्होंने धर्म की आड़ लेकर अपने जन समाज को बहकाया। पर जब जम कर राज करने की बात आई, तो महारानी विक्टोरिया के एलान की भाँति, अकबर ने यहाँ की व्यवस्था ब्राह्मणवाद को, ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। अब इस्लाम को अर्थात् शासक वर्गों के हिन्दू-मुस्लिम संगठन को व्यापार के लिये बड़े राज्यों की फिर आवश्यकता हुई। वे बड़े राज्य बने, परंतु कुछ ही दिनों में हिंदू और मुस्लिम उच्च वर्गों में सर्वाधिकार का युद्ध छिड़ गया, तब ही पूँजीवादी यूरोप के लोग आये और पूँजीवादी व्यवस्था से सामंतीय अर्थ व्यवस्था को उन्होंने हटा कर सब पर कब्जा किया। परन्तु क्योंकि पूँजीवाद विदेशी था अतः उसे भी यहाँ के सामंतवाद को रियायतें देनी पड़ीं और रियासतें बनी ही रहीं। जब १९४७ ई० में भारतीय और अँगरेजी पूँजीवाद ने समझौता किया, तब भारतीय पूँजीवाद का हाथ ऊँचा हो गया। अंगरेजी पूँजीवाद ने यहाँ के सामंतवाद को अपना सहायक समझा था।

परन्तु चतुर भारतीय पूँजीवाद ने उस मृतप्राय सामंतवाद को ऐसे समाप्त किया कि जितनी आवश्यकता पूँजीवाद को है उतना तो सामंतवाद दब जाये, बाकी जनता को लाभ हो न हो, उसकी बला से।

ब्राह्मणवाद के विरोधी सम्प्रदाय अपनी मर्जी से इस्लाम के आने पर मुसलमान हुए थे। सिंध, काश्मीर, पठानिस्तान में सिवाय ऊँची-ऊँची जातियों के कोई और जाति है ही नहीं। सो ही अधिकांश बौद्ध प्रभाव के प्रदेश बंगाल और आसाम में हुआ। शूद्र (कमकर) लोग ब्राह्मणों से मुक्ति पाने को मुसलमान हुए। जो विदेशी शासक मुसलमान थे, हालाँकि आपस में तातार, तुर्क और मुगल करके सत्ता के लिए लड़ते थे उन्होंने इन मत-परिवर्त्तन करने वालों को सेना में रखा, सहूलियतें दीं। तब मत परिवर्त्तन करना लाभ की वस्तु हो गई। दारा शिकोह के समय में इस्लाम का एक पक्ष और आया। बाबर के जजिया को अकबर ने मिटाया था। दारा ने संस्कृत में इस्लाम धर्म लिखाना शुरू किया। औरंगजेब के नेतृत्व में कट्टर मुस्लिम उच्च वर्ग ने अपनी सत्ता को खतरे में देखा तो अत्याचार प्रारम्भ किये और मराठा, सिख, जाट विद्रोह हुए। अंततोगत्वा मुस्लिम शासन खत्म हुआ तो मुस्लिमों में एक ओर कुलीन और भूस्वामी रह गये, दूसरी ओर जनता जो आज कमाए आज खाये, कल कमाये कल खाये। न धरती पास, न व्यापार। सरकारी सहूलियतें गईं। मध्यवर्ग बहुत कम था। बंगाल में अंगरेजों ने किसान मुसलमान पर शासन करने को हिंदू बिठाया और आर्थिक आड़ में साम्प्रदायिकता रखी। नतीजा यह हुआ कि पाकिस्तान बना। मुस्लिम जनता ने ब्राह्मणों की घृणा, गरीबी और शोषण से तंग आकर पाकिस्तान के स्वप्न देखे और जमींदार (भूस्वामी) और नवाबों ने फिर सोचा कि सामंतीय ठाठ रहेंगे। उगते मुस्लिम पूँजीवाद में हिन्दू पूँजीवाद से टक्कर लेने की सामर्थ्य तो नहीं थी, उसने लूट के लिए अलग इलाका चाहा। यों पाकिस्तान बना।

तो यह जाति और वर्ग तथा वर्ण-संघर्ष एक शृंखला है। चातुर्वर्ण्य

भी अपना रूप बदलता रहा है। पहले बर्बर (दास) युगीन समाज में जैसा कि कहा जा चुका है, निवर्ण आर्य थे, शूद्र अनार्य। प्रस्तुत उपन्यास उस युग की एक झलक देता है, जब पुजारी पुजारियों में, योद्धा योद्धाओं में, व्यापारी व्यापारियों में और कमकर कमकरों में अंतर्मुक्त हो गये थे। बुद्ध के समय तक तो यह काम पूरा हो चुका था। चातुर्वर्ण्य का सामंतकाल के लिए यों परिवर्त्तन हुआ। इसी चातुर्वर्ण्य का दयानंद के समय फिर नया रूप बदलने की कोशिश की गई। व्यापारी (पूँजीवादी) वर्ग ने जन्मना चातुर्वर्ण्य को कर्मणा चातुर्वर्ण्य बताने का यत्न किया था। बात वही थी। अब धन को वह जन्म की जगह अधिकार का खरीदार बनाना चाहता था।

प्राचीन ब्राह्मण ने कहा था कि सत्ययुग में धर्म था। बात थी भी यही क्योंकि ब्राह्मण ही तो इतिहासकार था। जब उसका ही सब पर अधिकार था तब अपने आप सत्ययुग होगा। जब क्षत्रिय का अधिकार बढ़ा—त्रेता आया। त्रेता में ब्राह्मण ने मिशनरी ईसाई पादरियों की भाँति भारत में यात्राएँ करके राज्य बढ़ाने में, आर्यप्रसार करने में, क्षत्रियों की मदद की। राम ने ऋषियों की हड्डियों के लिए सोने की लंका वाले राक्षसों के विरुद्ध कदम उठाया। फिर दबाना असंभव जानकर राक्षसों से समझौता किया। इससे द्वापर में आर्य और अनार्य उच्चवर्ग पास आये! इसके बाद अंतर्विरोधों ने युद्ध करवाया। इसके बाद 'कलि आ गया', यह कह कर ब्राह्मण ने मान लिया कि अपने तो अधिकार अब गये ही। प्रस्तुत उपन्यास इसी युग के संघर्ष को प्रगट करता है।

यहाँ दो-तीन बातें और देखना आवश्यक हैं। कुछ लोग कहते हैं कि रावण ब्राह्मण था अतः आर्य था। यह अर्ध-सत्य है। रावण असल में पुजारी वर्ग का था, अतः वह ब्राह्मण था। वह उस ब्रह्मा की संतान नहीं जिसके मुख से आर्य ब्राह्मण निकले थे। वह यक्ष कुबेर का भाई था, पुलस्त्य ब्रह्मा (अर्थात् एक और किसी ब्रह्मा) द्वारा किसी स्त्री

(पुष्पोत्कटा) से पैदा किया गया था। द्वापर में कृष्ण के समय तक राक्षस विवाह प्रचलित हो गया था! राम ने उसी के विरुद्ध युद्ध किया था।

राक्षस विवाह का प्रभाव आज तक तोरण मारने में अवशिष्ट है कि द्वार तोड़, घोड़े पर चढ़कर वर आता है। तलवार मार कर द्वार तोड़ता है, भीड़ के साथ वधू को लेकर चला जाता है। राक्षस और यक्ष एक धातु के निकले शब्द हैं। कहाँ तो यक्षों में अप्सरा बच्चा पैदा करके न पालती थी, और चाहे जिससे संभोग करके भी पवित्र रहती थी, स्त्री स्वतन्त्र थी, वहीं राक्षसों में वह एक अपहरण की वस्तु हो गई? मातृसत्ता पर पितृ-सत्ता की विजय, योनिपूजा पर लिंग पूजा की विजय के रूप में आई। और समाज में ऐसे नये देवता बने, जिसमें पहले के देवता कुछ अंतर्मुक्त हुए, कुछ मिट गये और उनका चिन्ह भी नहीं रहा।

और जिस प्रकार आर्य कबीले भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते थे, वैसे ही यह अनार्य कबीले वानर, ऋक्ष और राक्षस तथा यक्ष आदि भी घूमते थे। परंतु राक्षसों के समाज में भी परस्पर भेद थे। वह भी मूलतः कबीलों का समाज था जो एक जातीयता के सम्बन्ध में बँध रहा था। वे राक्षस जब हिमालय प्रदेश से चले तो लंका तक जीतते हारते बढ़ते चले गए। उन्होंने यक्षों की लंका छीन ली। उन्होंने दिग्विजय की। वे शिव के उपासक थे। हाँ, कहा जाता है रावण संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित और वेद का ज्ञाता था। संस्कृत का पाण्डित्य तो कोई असाधारण बात नहीं, पर वेद पारंगत होने पर विचार करना चाहिये। वेद का सम्पादन वेदव्यास ने किया था। उन्हें छोड़िए जो वेद को अपौरुषेय मानते हैं। हम तर्क की बात करते हैं। यह वह समय था जिसे इतिहास के अनुसंधानानुसार हम उत्तर वैदिक कहते हैं। राम के समय में शूद्र थे। शूद्र को समाज का अंग ऋग्वेद में बाद में माना गया है। बल्कि पुरुष-सूक्त यजुर्वेद में है। रावण का वेद-पारंगत होना वैसा ही है, जैसा रावण

द्वारा बनाई प्रचलित शिवस्तुति का रावण द्वारा ही लिखा होना। वैसे स्तुति तो सुन्दर लिखी गई है।

तो कहने को कोई पक्ष लेकर वैज्ञानिक अनुसंधान का नाश किया जा सकता है। कुत्सित समाजशास्त्री अपने अवसरवादी दृष्टिकोण के कारण ऐसा करते हैं। परन्तु यह तथ्यों को नहीं मिटा पाने के असफल प्रयत्न हैं।

यक्षों में पुरानी व्यवस्था रही। पहले शिव और काम एक देवता था। मातृसत्ता पर पितृसत्ता का उदय यक्षों में रक्षों का उदय है। रक्षामः और यक्षामः की महाभारत कथा इनकी व्युत्पत्ति पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न करती है।

राक्षसों ने दूसरों को लूटा। इस लूट से उनकी शक्ति बढ़ी। आर्थिक रूप से वे धनी थे, रावण दास बनाता था, बंदी बनाता था, उसके पास योद्धा, कारीगर, पुजारी थे। इन सबका उल्लेख आता है। परन्तु वह देवयोनि है। देव तो एक आर्य कबीला था जो सबसे पहले भारत की सीमा पर आया। इसको यहाँ नाग, गरुड़, यक्ष, राक्षस, गंधर्व, विद्याधर, किन्नर, बानर, ऋक्ष आदि जातियाँ मिलीं। महाप्रलय के बाद वैवस्वत मनु ने सेना के बल से राज्य में संपत्तिशालियों की रक्षा के लिए चतुर्वर्ण्य की प्रतिष्ठापना दृढ़तर की। पहले के सब कबीले वाले समाज और जातियाँ अब देवयोनि कह कर स्वीकृत की गईं।

यह देवयोनि जातियाँ हिमालयस्थ थीं। बाद में भी बहुत दिन रही होंगी। और अंत में काल के मुख में नष्ट हो गईं या इधर-उधर अंतर्मुक्त हो गईं।

एक दौर के बाद समाज में दूसरा दौर आता है, पर बीच में कोई एक रेखा नहीं होती कि यहाँ से यह युग है, यहाँ से यह। एक युग प्रारंभ होता है, तब पुराने का प्रभाव अधिक रखता है और दूसरे के प्रतिष्ठापित हो जाने पर पुराने का प्रभाव कम होता होता धीरे धीरे समाप्त हो जाता है,

या कोई रूप बदल कर अन्तर्मुक्त हो जाता है। इस प्रकार व्यवस्था बदली। रावण का राक्षस समाज समृद्ध था। निरंकुशता उसमें आ गई थी। राम के समाज में राजा निरंकुश नहीं था, आमन्त्रण अर्थात् मंत्रियों की सलाह लेकर राजा काम करता था (दशरथ को ही देखिये), तथा समितियाँ परामर्श देतीं थीं। कुल राज्य था, छोटे-छोटे राज्य थे।

यहाँ मिथिला, यहाँ अयोध्या और न जाने कितने और थे, कुल गण-गोत्र पर आधारित थे। अश्वमेध के नाम पर आर्यों की लूट बढ़ रही थी। इन्हीं में राम थे, तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से राम ने जातिवर्ग को छोड़ा और कबीलों टॉटेम जातियों, ऋक्षों और वानरों को लेकर रावण को हराया। अंततोगत्वा इन वानरों और ऋक्षों की कबीला जातियों को द्वापर में कृष्ण ने मारा भी, आपस में मिलाया भी, कि वे फिर अंतर्मुक्त हो गईं, जैसे इस देश में हूण खो गये, पहलव खो गये ग्रीक खो गये। वे चातुर्वर्ण्य में समा गये। कुछ जातियाँ कबीला जातियाँ थीं, जैसे गूजर, मीणा, जाट, अहीर। ये लोग जब ब्राह्मणों को सर्वोपरि मानने लगे तो ब्राह्मण ने उन्हें उनके कबीलों के सारे रिवाजों के साथ ज्यों का त्यों अपने समाज का अंग मान लिया। जाट चाहे मेहतरानी से ब्याह करे, चाहे चमारिन से। ब्राह्मण को सिर झुकाये जा, जो जी में आये सो किये जा।

प्रश्न उठता है कि जब इस्लाम का अल्लाह और उपनिषद् और वेदांत का ब्रह्म इतने निकट हैं तो वे एक क्यों नहीं हो गये। नहीं वे एक नहीं हैं। वे बाह्य रूप में एक लगते हैं। वे दोनों भिन्न आर्थिक परिस्थितियों में जन्मे थे। अल्लाह का जन्म कबीलों को एक करते समय हुआ था। ब्रह्म पहले समाज का रूप था, बाद में समाज (बर्बर युगीन) की जैसे-जैसे विषमता बढ़ती गई पूर्णता (absolute) धरती से उठकर आकाश में चली गई। और अल्लाह जब कि सब कुछ करता था, ब्रह्म निरपेक्ष और कुछ नहीं करता। हाँ अपने बाह्य रूप में दोनों दिखते न

थे। अल्लाह यों नहीं दिखता था कि कबीलों की छोटी सीमा के परे की चीज दिखाता था, ब्रह्म यों नहीं दिखता था कि वह सत्य को समाज की विषमता के परे रखता था और इसलिए सारे संसार को झूठा करार देकर शून्य को ही उच्चवर्णों ने जीवन का आधार बना देना चाहा था। जिस समय दारा का युग था, दोनों का बाह्य रूप एक ही आर्थिक व्यवस्था में था और अल्लाह और ब्रह्म ने मिलने की भी चेष्टा की थी। किंतु उस समय जातीयतावाद उठा—संकीर्णता ने उसे रोका। रोकने का एक कारण था कि यदि संकीर्णता खो जाती तो अल्ला भी सैकड़ों देवताओं की भाँति हिंदुओं का एक देवता होता, और मुल्ला जी की जगह अल्ला संप्रदाय के पंडित जी अल्लोपनिषद् सुनाया करते। जिन्हें धर्म के नाम पर सहूलियतें थीं, वे मारे जाते; उन सहूलियतों के लिए ब्राह्मण बंगाल की धर्मपूजा में डोम ब्राह्मण बनने तक से नहीं हिचका। वह तो पुरोहित बनने का हर जगह अपने को हकदार समझता था। झगड़ा यों हुआ।

उपर्युक्त विवेचन ने प्रस्तुत पुस्तक को समझने की आधारभूमि प्रस्तुत की है। मैंने इतिहास के ऐसे ही अन्धकार युगों को अपना विषय बनाया है।

'मुर्दों का टीला' में ईसा से ३५०० ई० पू० आर्यों से पुराना भारत चित्रित था। 'प्रतिदान' में महाभारत युग में ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष चित्रित किया था। 'स्वर्गभूमि का यात्री' (नाटक) में महाभारत युद्ध के बाद होने वाले आर्य शक्तिक्षय को प्रकट किया था। 'चीवर' में मैंने राज्यश्री के समय के ह्रासकालीन भारतीय सामंतवाद की तस्वीर खींची थी। 'रामानुज' (नाटक) में भक्ति संप्रदाय के उस मानवतावाद को प्रगट किया था जिसने एक सशक्त हिलोर फैलाई थी; निम्नवर्गों को, ब्राह्मणों की रियायतों के रूप में, नई शक्ति मिली थी, प्रस्तुत उपन्यास उस लम्बी श्रृंखला के एक और ऐसे युग को प्रकाश में लाता है जिस पर विद्वानों की दृष्टि नहीं गई।

हमारे हिन्दी के विद्वान या तो बौद्ध संप्रदायों के इतने अनुयायी हैं कि वहीं से सभ्यता का प्रारम्भ देखते हैं, या दूसरी ओर कुछ लोग वर्ग संघर्ष के नारों का प्रयोग कर, यूरोपीय विद्वानों के काल-विभाजन को हूबहू स्वीकार करके, मार्क्सवाद को फ़िट कर देना चाहते हैं। खेद है, वे योग्यता रख कर भी गहरी दृष्टि से काम नहीं लेना चाहते, क्योंकि उनके निर्णय पहले ही बन चुके हैं, जिन्हें बदलने में उन्हें अपने आत्म-सम्मान की हानि दिखाई देती है। बौद्ध संप्रदायवादी यह भी जानते हैं कि बुद्ध से पहले ही यहाँ अनेक ब्राह्मण के कर्मकाण्ड विरोधी श्रमण संप्रदाय थे। उनमें से बहुतों पर अनार्य जातियों के योग और तप का प्रभाव पड़ा था। ऐसा ही जैन संप्रदाय भी था जिसका बीज वास्तव में द्राविड़ जातियों में था। उसका मूल इतना गहरा था कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में ही जैन मैसूर में अनेक थे। महावीर २४ वें तीर्थ-कर थे। उनसे ढाई बरस पहले पार्श्वनाथ हुए थे। उनसे पहले २२ और हो चुके थे जो क्रमशः इस प्रकार हैं:—ऋषभदेव। आप तब जन्मे थे जब मनुष्य पेड़ों के नीचे रहते थे। विवाह नहीं होता था। ऋग्वेद में इनका वर्णन है। दूसरे, अजितनाथ थे। इक्ष्वाकुवंशीय थे। बंगाल में स्वर्गवास हुआ था। तीसरे संभवनाथ थे। श्रावस्ती में जन्मे। इक्ष्वाकुवंशीय थे। अकाल मिटाया था। चौथे अभिनन्दननाथ थे। अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय राजा थे। पाँचवें सुमतिनाथ थे। कौशलपुरी में जन्मे। छठे थे पद्मप्रभ। कौशाम्बी में जन्मे थे। सातवें सुपार्श्वनाथ थे। काशी में जन्मे। चन्द्रप्रभ चन्द्रपुरी नगरी में जन्मे, आठवें थे। नवें, दसवें, ग्यारहवें, सुविधिनाथ (पुष्पदन्त), शीतलनाथ, तथा श्रेयांसनाथ थे जो क्रमशः काकंदीनगर, भाद्दिलपुर और सिंहपुर में जन्मे थे। बारहवें वासुपूज्य ब्रह्मचारी थे, चंपा में जन्मे। कम्पिलपुर के विमलनाथ, अयोध्या के अनन्तनाथ, रत्नपुर के धर्मनाथ, हस्तिनापुर के शान्तिनाथ राजा, हस्तिनापुर के कुन्थुनाथ राजा, हस्थिनागपुर के अरनाथ राजा क्रमशः १३, १४, १५, १६, १७

तथा १८वें थे। १६वीं मल्लिनाथ मिथिला की थी। यह स्त्री थी। अविवाहित रही, ब्रह्मचारिणी। इसके काल में श्रावक थे। श्राविकाएँ थीं। २० वें मुनि सुव्रतनाथ राजगृह के थे। मथुरा के नमिनाथ २१वें, तथा २२वें, नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) शौरीपुर के थे। आपको कृष्ण का बंधु बताया जाता है। पशुवध विरोधी थे। उपर्युक्त विवरण जैन आधारों पर लिया गया है। देखने पर इतना पता चलता है कि संप्रदाय का प्रारम्भ में यह रूप नहीं था जो आज है। पहले उस समाज में प्रारम्भ हुआ जब विवाह भी नहीं होता था। फिर इसमें ब्रह्मचर्य आया। फिर स्त्री भी हुई जो दीक्षा दे सके। तदनंतर श्रावक, श्राविकाओं का प्रारम्भ हुआ। यह तो सब आर्य अवशेष की परम्परा ही है। कितने और रहे होंगे जो अज्ञात हैं? और जाने इनमें कितने ही और राजा भी थे, जो ब्राह्मणों ने विरोधी जान कर गिनाये ही नहीं। अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और तप का रूप महावीर के समय में आया। वह तो ईसा पूर्व छठी शती में आया था।

महावीर के समय में शाक्य, बल्लीय, कालाम, भग्ग, कोलिय, मल्ल १ मल्ल २, मोरिय, विदेह तथा लिच्छवि गण थे। कपिलवस्तु, अल्लकप्प, केसपुत्र, सुमसुमार, रामगाम, पावा, कुसीनारा, पिप्फलीवन, मिथिला और वैशाली में वे क्रमशः रहते थे। विदेह तो जनकों का राज्य था। सीरध्वज विदेह सीता और राम के समय में था। अश्वलजनक याज्ञवल्क्य के समय में था। इसने ब्रह्मज्ञान में कहा था कि मिथिला जल जाये तो मुझे शोक न हो। सचमुच बर्बर युगीन उच्चवर्ग ने ब्रह्म को समाज के रूप से हटाने की पराकाष्ठा कर दी थी। इसी कुलराज्य के नाश पर मिथिला के विदेह कुलों ने गण स्थापित किया। ध्यान रहे, यदि यह पहले भी गण ही होता तो ब्राह्मण ग्रन्थों में विदेह जनकों का नाम भी न होता। पहले वहाँ ब्राह्मणों का प्रभाव बहुत था। अश्वल की सभा में ही कुरु और पंचाल के उद्भट दार्शनिक ब्राह्मण आते थे। याज्ञवल्क्य, होता अश्वल, जारत्कारव आर्त्तभाग, लाह्यायनि भुज्यु, उषस्त चाक्रायण, कहोड

कौषीतकेय (इसको परवर्त्ती काल में महाभारत में भी गिनाया गया है), वाचक्नवी गार्गी, उद्दालक आरुणि, विदग्ध शाकल्य जैसे विचारक अपनी दार्शनिक सीमाओं में यही कह रहे थे कि ब्रह्म अंततोगत्वा सबसे परे अज्ञात है। कपिल ने कहा—वह सिद्ध भी है असिद्ध भी। कपिल क्षत्रिय था। जैनों ने कहा—वह नहीं है, आत्मा है। जैन भी क्षत्रिय थे। बुद्ध ने कहा—न परमात्मा है, न आत्मा है; कर्मानुसार सब होता है। बुद्ध भी क्षत्रिय थे। और कर्मवाद का आर्यप्रवर्त्तक था कृष्ण। दासयुगीन व्यवस्था को यह अनार्य चिंतन (पुरानी दासयुगीन सभ्यता के चिंतन) की भेंट थी कि जो होता है कर्मानुसार। कर्म का पापपुण्य तत्कालीन समाज व्यवस्था का अच्छा बुरा ही नियंत्रित करता है। अतः उच्चवर्णों की, संपत्तिशालियों की रक्षा उससे खूब होती थी। कृष्ण भी क्षत्रिय था। कृष्ण का ब्रह्म सबमें था, सबसे परे था। उपनिषद् ने उसके संहार रूप को भी स्वीकार किया, पर उससे भी उठा कर उसे निराकार कर दिया। ध्यान रहे, कृष्ण भी गण का व्यक्ति था। विद्रोह में मात्रा भेद था।

क्षत्रिय विद्रोह पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ा। कुल गणों ने स्थान लिया मिथिला में। और लिच्छवि और शाक्य अपने को इक्ष्वाकु कहते थे। इक्ष्वाकु जैनों में भी मिलते हैं। इक्ष्वाकु राम थे—वे भी सहिष्णु थे। इक्ष्वाकु कुल आर्यों का पुराना दल था जो हैहयों से पहले आया था और उसको अयोध्या में कई अनार्यों के साथ काफी रहना पड़ा था। इस इक्ष्वाकु कुल के वंशज लिच्छवियों में रक्तगर्व था। शाक्यों में रक्तगर्व था। अपनी बेटी किसी को ब्याहते नहीं थे। आपस में ब्याह करते थे। क्षत्रिय थे। ब्राह्मण परम्परा अग्निवर्ण जैसे विलासी राजा के साथ इक्ष्वाकु वंश का एक परम्परा में (कालिदासीय रघुवंशानुसार) अन्त करती है। उसकी स्त्री गर्भवती होती है। तब आमंत्रण (मंत्री गण) राज्य सँभाल लेते हैं। हमारे सामने फिर यही आता है कि लिच्छवि और

शाक्य दो गए हैं। कुलगर्व, रक्तगर्व। विड्डभ राज्य के लिए शाक्यों का नाश बुद्ध के सामने ही करता है, उनके रक्तगर्व को मिटाने का बहाना लेकर। और यही बहाना लेकर एक दूसरा सामंतवादी अजातशत्रु खानों के व्यापार के पीछे लिच्छवियों पर आक्रमण करता है। कुलगर्व में वे भाई बहिन का ब्याह करते हैं। इक्ष्वाकुवंश की इसी परम्परा को देखकर बौद्ध स्रोतों में सीता को राम की बहिन और स्त्री दोनों कहा गया है। क्या आश्चर्य है! बहिन से ब्याह होना भी एक समय समाज में न्याय था। आज के पैमाने से उसे क्यों नापा जाये। बुआ का बेटा अर्जुन सुभद्रा को ब्याह लाया था। मदरासी ब्राह्मण आयन्गारों में मामा भाञ्जी का अभी भी ब्याह होता है। मुसलमानों में दूध छोड़ कर अभी तक ब्याह करते हैं। इसी ढाँचे के गणों के आदिकाल की सामाजिक अवस्था का हमने चित्रण किया है। जब रघुकुल के उत्तराधिकारी लिच्छवि और शाक्य दिखाई देते हैं, जब महानाम वासभखत्रिया नाम की दासी पुत्री को प्रसेनजित् को, रक्त कुलीनता बचाने को, ब्याह देता है, तब हमें इक्ष्वाकुवंश के एकतंत्र का कहीं वर्णन नहीं मिलता। काशी के पार्श्वनाथ जैनों के २३वें तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंशीय ही कहलाते हैं। डा० बूलचंद ने उस पर अच्छा प्रकाश डाला है। हरमैन जैकोबी ने पहली बार तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता प्रमाणित की थी। पार्श्व ने चातुर्याम—सुनृत, अहिंसा अस्तेय, अपरिग्रह पर जोर दिया था। कुलगण की दार्शनिकता, क्षत्रिय ब्राह्मण संघर्ष, दासप्रथा रखने का यत्न, सब ही तो पार्श्व ने कहा—सच बोलो, मारो मत (कर्मकाण्ड त्यागो), किसी का लो मत और सब त्याग दो, क्योंकि झूठा है। महावीर ने ब्रह्मचर्य को भी बराबर का स्थान दिया। पार्श्व के समय में श्रमण हुए, यह जैन स्रोत कहते हैं। और फिर अपने धर्म को इन तीर्थंकरों और गौतम बुद्ध ने राजनीतिक रूप दिया—'एकतन्त्र' के विरुद्ध संघ बनाया। महावीर और बुद्ध दोनों ने छुआछूत, जाति-पाँति का विरोध किया। बाहर जिसको संसार में नहीं कर सकते

थे, अपने आदर्शों को पालने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की तत्कालीन कल्पना को पूर्ण करने के लिए, संघ बनाये, विहार बनाये। परन्तु सब व्यर्थ हो गया। जैन धर्म वैश्यों में पड़ा। उन्होंने उसे धन के बल पर ब्राह्मणकृत चातुर्वर्ण्य को स्वीकार करके पाला। बौद्ध धर्म विदेशी जातियों के मतांतरों और बर्बरयुगीन आर्थिक व्यवस्था की विषमता से उत्पन्न होकर जब सामंतवादीय आर्थिक व्यवस्था पर पड़ा, तो एक मतवाद मात्र रह गया, बाह्य रूप उसने सब ब्राह्मणधर्म के स्वीकार कर लिये और क्षत्रियों को ब्राह्मण विरोध के लिए उकसाता रहा। मिलिन्द से जब नागसेन बहस कर रहा था तब महायान के रूप में, सबको छोड़ने वाला हीनयान, दुखवाद और अपरिग्रह को मान कर बर्बरयुगीन समाज की विषमता से आक्रांत दर्शनशास्त्र, सामंतकाल के घोड़े पर चढ़ा, हाथी पर चढ़ा और फिर स्त्री के नग्नदेह में वज्रयान बन कर डूब गया। वह इतना कुरूप हो गया कि विहारों के पुजारियों की लूट के विरुद्ध, जन-समाज के कवियों ने कहा—सब छोड़ दो। सहजयान आया और वही भक्ति में परिणत हो गया।

दर्शन का आधार आर्थिक व्यवस्था है। परन्तु यह कहा जाये कि आर्थिक व्यवस्था के बदलते ही, या व्यापार का संतुलन बदलते ही रातों-रात दार्शनिक विचार बदल जाते हैं, यह गलत है। वे धीरे-धीरे बदलते हैं, उनका प्रभाव और भी ज्यादा दिन में जाता है।

मूल रूप में धर्म समाज का न्याय है, रूप है। अर्थ आर्थिक व्यवस्था है। काम स्त्री-पुरुष—प्रजनन—सम्बन्ध है। मोक्ष उसका सारांश है। इन चारों का भी विभिन्न काल में विभिन्न अर्थ लगता रहा है। ऐसे ही किसी समय के ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास नामक आश्रमों के भी बाह्य रूप ही नहीं, मूल रूप भी बदलते रहे हैं।

इतिहास एक मृत वस्तु नहीं है। वह जीवंत है क्योंकि प्रत्येक पीढ़ी के जीवन की कहानी है। उन्हीं पीढ़ियों ने मकान बनाना प्रारंभ किया

था। उनके अनेक अनुभवों से हमने अच्छे से अच्छा मकान बनाना सीखा है। प्रत्येक युग में मकान के बनाने वाले और गिराने वाले दोनों ही रहे हैं। हम कौन हैं ?

हम निर्माता हैं। विनाशकारी लहरों को कुचलना हमारा कर्त्तव्य है क्योंकि विनाश के कारण सृजन-शक्ति को बार-बार धक्का लगता है।

इतिहास की विरासत हमारी है। हम एक विराट इतिहास के उत्तराधिकारी हैं। इतिहास बताता है कि हम अभी तक खण्ड सत्यों को ही पूर्ण सत्य मानते रहे हैं; जहाँ हमारी बुद्धि ने काम नहीं दिया है वहाँ हमने कल्पनाओं से मन को भरमाया है।

मैंने इतिहास विषयक रचनाएँ इसी भावना से प्रेरित होकर लिखी हैं। जो इस भावना को पलायनवाद कहते हैं वे कुत्सित समाजशास्त्री हैं। वे न अतीत को जानते हैं; न भविष्य बना सकते हैं। जिसे यह नहीं मालूम कि उसका जन्म कैसे हुआ, उसके लिए न अपने जीवन की सार्थकता है, न भविष्य की पीढ़ियों के प्रति उसमें कोई उत्तरदायित्व ही मिल सकता है।

यदि मुझसे भूलें रह गई हैं तो मैं क्षम्य हूँ। कार्य अत्यन्त कठिन है। मैं अल्पज्ञ हूँ—

—रांगेयराघव

9

girls are pure like
... should the
lower ... made
they ... ?
...
A ...
... you are cool
They ... my dear
girl

अँधेरे के जुगनू

तुरंग तीव्र गति से भाग चला। अश्वारोही ने वेग से वल्गा को खींचा और चिल्लाया—'समुद्र ! और वेग से।'

उस समय संध्याकालीन धुंधली छाया अब सम होकर धरती पर उतर आई थी। चारों ओर एक शान्त नीरवता थी। वटवृक्ष के घने और ऊँचे, आकाश को भी ढँक लेने का प्रयत्न करने वाले पत्ते, इस समय गहरे श्यामल दिखाई दे रहे थे। आक के पौधों की भीर दूर ऐसी लगती थी जैसे किसी ने निष्प्रभ नीलमणियाँ उठाकर मरकत के ढेर पर फैला दी हैं। कहीं-कहीं बबूल के पतले पत्तों वाले वृक्ष खड़े थे। उनकी डालियाँ जब हल्की हवा में हिलती तो लगता वे हाथी की सूँड़ की भाँति झूल रही हैं और उनको शून्य के भार ने नमित भाल कर दिया है। दूर-दूर तक फैले टीलों पर सांध्यप्रभा पड़ रही थी। वे ऊसर टीले इस बार मूँगों के रंग के दिखाई दे रहे थे। उनका अपना गेरुआ रंग बीच-बीच में गहरी रेखाएँ डाल देता। दूर, दूर के नीले से दिखाई देते, जैसे आकाश की छाया से वे आक्रांत हो गये हैं; उन्हें देख कर लगता जैसे वे उतने कठोर भी नहीं हैं, वे हल्के बादलों की शान्ति लिये हैं, और उनके पीछे अंधकार गहरा होता जा रहा है।

कहीं-कहीं उगे धवा के वृक्ष, कहीं शमी के नन्हें पत्ते वाले वृक्ष और फिर सघन वनप्रांतर, जिसका बाह्य भाग विभिन्न प्रकार की वनस्पति से घिरा हुआ है। बाँई ओर के सरोवर के जल पर अब काली और नीली छाया गहरी उतर रही थी, और दाँये किनारे के छोटे उपसरोवर में खिले कमलों का सिर अब झुक चला था जैसे सूर्य महा-

संग्राम में पराजित होकर अपना जो शंख प्राणभय से आर्त्त होकर फेंक कर चला गया था, वह इस उपसरोवर में आकर गिर गया है।

दिन के परिश्रम के उपरांत पक्षी दल के दल बाँध लौट रहे थे। आकाश में वे पंक्तियाँ बनाकर उड़ते। कभी कुछ दाँये-बाँये उड़ते, लगता वे उड़ नहीं रहे हैं, तिरते जा रहे हैं और फिर समुदाय एक ओर क्षितिज की ओर जाकर लय हो जाता।

विशाल अश्वत्थ वृक्ष, जिसके नीचे अनेक देवी-देवताओं की छोटी-छोटी मूर्तियाँ पड़ी थीं, उस पर काँव-काँव करके कौए फट-फट करके, बार-बार उड़-उड़ कर अंततोगत्वा बैठ गये और आकाश में अब सुनहली आभा छा गई जिसने अपनी प्रभा से समस्त को प्रतिबिंबित किया और काले, चौड़े पंखों वाले चमगादर हवा में फरफराते इधर-उधर उड़ चले।

सूनी पगडण्डी अब दिखने लगी और वह विशालकाय नीले पत्थरों के बीच से होकर उस पहाड़ी के एक ओर चढ़ने लगी और दूर से लगातार घोड़ा दौड़ाते अश्वारोही को देख कर अब घोड़े के सुमों के प्रहार की प्रतिध्वनि से बजने लगी। अश्व पर एक आस्तरण था और आरोही ने अपने जंघाप्रदेश से उसे दबा रखा था। आरोही हस्तिशौंडिक धोती पहने था। कमर पर चर्मपट्ट बँधा था। पाँव में लोहित पालिगुंपिम (जूता) था और सिर पर लाल उष्णीश में तलवार खोंस रखी थी। उसके शरीर पर रक्त-वर्ण कंचुक था जो जंघा तक पहुँचता था और मेढ़े के सींग का बना धनुष उसके कंधे के पीछे तूणीर के पास कसा हुआ था। उसके कंचुक पर वक्षप्रदेश पर हिरण्य का काम बड़ी ही बारीकी से किया हुआ था। वह एक सुदृढ़ और बलिष्ठ युवक था। उसका गोरा रंग इस समय तमतमा आया था। कठोर भ्रू और लंबी नासिका के कारण ही उसे देखकर लगता था कि यह व्यक्ति सहज नहीं है! उसके केश पीछे, इस समय उड़ रहे थे। वह अश्व पर झुका हुआ

था और उसने अश्व की वल्गा को बाँये हाथ से थाम रखा था। घोड़ा निरन्तर लथपथ भागा चला जा रहा था और उस तीव्र गति में भी आरोही डाँवाडोल नहीं, नितांत कुशल आरोही की भाँति बैठा कभी-कभी पीछे की ओर देख लेता था। उसके नेत्र लंबे थे, और कोनों पर उनमें स्वाभाविक नीलिमा थी, जिसके कारण वह स्पष्ट ही तीक्ष्ण और अमधुर लगता। उसका वक्ष सुगठित था और उस पर झूलती मणिमालाएँ इस समय आवेग से हिल रही थीं। उसके दाँये हाथ में एक भाला था जिस पर एक मनुष्य का लहूसना कटा सिर अटका हुआ था।

आरोही ने एक बार पीछे की ओर फिर देखा और फिर अश्व को कुदा कर बाँये हाथ की ओर पड़े पाषाणों को पार कर लिया और फिर उसने उसे आगे बढ़ने को एँड़ लगाई। अश्व ने एक बार अपनी ऊँची और मोटी ग्रीवा को उठाकर दाँतों को निकाल दिया, क्योंकि उसके मुँह में लोहा चुभा, और फिर वह उसी गति से आगे बढ़ चला।

आकाश में अब हिरण्याभा के साथ लालिमा भी छा गई थी जैसे अपने सुन्दर हाथ के पास हथेली रखकर सुन्दरी संध्या इस समय आरसी में अपना रूप देख रही थी। पर्वत के नील और गेरू के से शिलाखण्डों की छाया में पथरीले पथ पर चलते हुए अश्वारोही ने देखा, उसको चारों ओर से दीर्घ पत्थरों की गगनचूमती सी शिलाओं ने घेर रखा था और उसकी आँखों में एक अजीब सी शंका ने झाँका। उसकी भौं खिंच गई और उसने आतुर दृष्टि से पीछे की ओर फिर देखा। परन्तु वहाँ कोई न था। वह अश्व को पर्वत से नीचे की ओर उतारने लगा। अश्व परिचित पगों से इस समय धावित हो उठा। उसे यहाँ के पाषाणों का जैसे ज्ञान था। उतरते हुए युवक ने देखा कि पहाड़ी के नीचे की धरती ऊपर उठी आ रही है और वह दूर से क्षीण और लघु दिखने वाली भूमि ज्यों-ज्यों पास आती है, विराट और विराट से विराटतर प्रसार बनती चली जा रही है।

युवक ने जंघाओं से अश्व को दावा और वह बाँये हाथ से वल्गा पकड़ कर उसकी पीठ पर जकड़ सा गया, यद्यपि अब वह अश्व पर बैठा नहीं रहा, खड़ा-सा हो गया और इसी में उसका भाला पीछे उठ गया, जिस पर कटे नरमुण्ड की वीभत्स आकृति दिखाई दे रही थी। मरणवेला का आक्रान्तभय उस पर स्पष्ट था और निकले हुए दाँत उसकी विकृति को और भी बढ़ा रहे थे। नरमुण्ड के सिर पर बाल बिखरे हुए थे, कुछ काले, कुछ श्वेत। कानों में बहुमूल्य हीरक जटित कुंडल थे। होठों पर घनी मूँछें थीं, ऊपर की ओर तनी हुई, जैसे मृत्यु ने उन्हें अभी गिराया नहीं था।

वायु की शीतलता अब बढ़ गई थी और घाटी में उतरते हुए युवक के माथे का स्वेद सूख गया और सामने दूर का सघन वनप्रांतर उसे कई हाथियों का एक गिरोह सा दिखाई दिया। उसे वहीं पहुँचना था। आकाश में अब भी आलोक था और सरोवर का जल किञ्चित स्वर्णाभ, कुछ-कुछ रक्तिमान सा दिखाई दे रहा था, केवल गर्भ में से बढ़ते पृथ्वी के अंधकार ने उसके ऊपरी स्तर को दर्पण की सी चमक दे दी थी, जिस पर, दूर से सोये कमल ऐसे लगते थे जैसे किसी ने श्वेत ऊनी पलिका के एक छोर पर रेशमी कौसेय्य पटक दिया हो।

किंतु तरुण को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं थी। उसने घोड़े को धीमा किया क्योंकि यहाँ उतार बिल्कुल खड़ा जैसा था और जब अश्व सफलता से उतर गया तब वह उत्तर की ओर के पथ को पकड़ कर बढ़ा, क्योंकि यहाँ से पथ सरोवर के कारण घूम गया था और उसे वनप्रांतर में शीघ्रातिशीघ्र पहुँचना था। अब उसके मुख पर आतुरता स्पष्ट दिखाई दे रही थी। उसके गहरे नेत्रों की तीक्ष्णता मुखर हो गई थी और उसके उष्णीश में खुँसे हुए खड्ग का भार अब उसे झुकाने लगा था। उसने हाथ उठाकर उसे ठीक कर लिया और अश्व को मोड़ा।

हठात् इस वन्यप्रदेश के चतुष्पथ पर तुरंग रुक गया।

अश्वारोही ने कहा—बढ़े चलो समुद्र ! रुकने की कोई आवश्यकता नहीं है। थक गये हो ?

किंतु समुद्र रुका रहा। आरोही ने क्षण भर सोचा और फिर उसने नीचे देखा। तुरंग के अगले और पिछले पाँवों के बीच कोई व्यक्ति पड़ा हुआ था। अश्वारोही समझा नहीं। फिर उसकी समझ में आया। उसने अपने हाथ का भल्ल टेका और वह नीचे उतरा। उतर कर उसने कहा—हट जा समुद्र ! मुझे देखने दे।

वह लंबी अयालों वाला सफेद ऊँचा घोड़ा अपने आस्तरण के हिरण्य गौरव को लिये इस कौशल से हट गया कि पृथ्वी पर पड़े व्यक्ति की कोई हानि नहीं हुई। अश्व एक ओर जाकर खड़ा हो गया और धरती को दो-तीन बार खूँद कर वह शान्ति से अपनी विश्रान्ति को जैसे दूर करने लगा।

युवक ने देखा। वह एक काला सा ढेर था। वे केश थे। धूलि से धूसरित हो गये थे। वह एक स्त्री पड़ी थी जिसको इसके बालों ने ढँक लिया था। निश्चय ही वह चलते-चलते ठोकर खाकर गिर पड़ी है, क्योंकि उससे पाँव का अँगूठा फट कर रक्त आ गया है।

युवक ने उसे कठोरता से देखा। फिर उसके केश पकड़ कर उसे सीधा किया। धूल से मुखाकृति ढँक सी रही थी। उसे वह स्त्री अत्यन्त गंदी दिखाई दी। उस स्त्री के गालों पर रो-रोकर आँसुओं की लीक सी बन गई थी। उसकी साधारण वेषभूषा थी। एक अंतरवासक और कुंचुक पहने थी। उत्तरासंग कंधों पर अभी उलझा हुआ था। साधारण पीतल के और काँसे के आभूषण थे। युवक ने देखा वह थी युवती ही। पाँवों में वह बाँस की बनी चप्पल पहने थी।

युवक क्षण भर देखता रहा, फिर उसके मुख से हठात् फूट निकला— स्त्री ! स्त्री के अश्रु ! वेदना ! या निर्बलता ।

उसके भीतर एक उथल-पुथल सी थी। दूर कहीं शृङ्गीनिनाद से पर्वतमाला काँपने लगी। मृगों का एक झुण्ड सरोवर के पास से भाग कर वनस्पति में छिप गया। युवक ने निराश दृष्टि से देख कर उस स्त्री को वहीं लिटा दिया और उठ खड़ा हुआ। वह समुद्र के पास गया। और वह फिर उस पर सवार हो गया। अश्व ने जैसे जिज्ञासा से एक बार मुड़ कर उस पड़ी हुई स्त्री की ओर देखा, किंतु वह फिर भाग चला। इस बार उसमें फिर नई शक्ति थी, क्योंकि अपनी मांशपेशियों को झटका देकर, हिला-हिला कर उसने इस बीच में अपनी कुछ थकान दूर कर ली थी।

अब आकाश में सुनहली चमक अंतिम बार आई। अश्वारोही दृष्टि से ओझल हो गया।

× × ×

आकाश में चीलें मँडरा रही थीं। एक टीले पर खड़े एक वृद्ध ने चलते-चलते उन्हें देखा। वह रुक गया। उसके कंधे पर साणिय उत्तरासंग और मत्स्यबालक पहने हुए, उसके पाँवों में खल्लकबद्ध था। कटि में कायबंध में उसका लम्बा खड्ग लटका हुआ था। वक्ष पर साणिय कञ्चुक था। उसके बाल कन्धे पर पड़े हुए थे। आगे मस्तक पर वे छिर-छिरे थे परन्तु पीछे की ओर सफेद और काले दिखाई दे रहे थे। उसका रंग ताम्र था। भौं खिचकर नाक के ऊपर मिल गई थीं और आँखे पतली-पतली सी उभरी हुई गालों की हड्डियों से दबी सी दिखाई देती थीं। उसके होंठों पर श्वेत और काली मूँछें थीं जो उतर कर उसकी दाढ़ी के अधिक श्वेत भाग में मिल जाती थी। उसके दाँत दृढ़ थे और हाथों पर नसें उफन आई थीं। वह शरीर का छरहरा और शिथिल नहीं लगता था। उसके मुख पर करुणा थी जो आयु की शुष्कता को भेद कर भी प्रगट होती थी।

उड़ती हुई चीलों की ओर वह आतुरता से देखता रहा। और फिर उनकी सीध बाँध कर टीले से नीचे की ओर उतरने लगा। कुछ ही देर में वह प्रशस्त मैदान में दिखाई देने लगा, किन्तु अब चारों ओर की वनस्पति ऊँची हो गई और उसकी दृष्टि को रोकने लगी। कुछ देर इधर-उधर देखने के बाद जब वह कुछ भी परिलक्षित नहीं कर सका तो वनप्रांतर के पथ पर बढ़ चला। अब आकाश में अंतिम चमक ऐसे दिखाई दे रही थी जैसे बुझती अग्नि का धुँआ निकल रहा हो और एक-आध सूखे तिनके को पकड़ कर जैसे लपट क्षण-क्षण भर फिर काँप उठती हो।

वृद्ध के मस्तक पर गंभीर चिन्ता ने अपना जाल फेंक दिया था जो अनेक-अनेक रेखाओं के रूप में प्रकट था। इसी रेखा-जाल में सम्भवतः चिन्ता कोई समस्या के हल रूपी मत्स्य पकड़ लेना चाहती थी। कभी-कभी वह जाल हिल उठता, विचारों का ढेर-ढेर पानी जैसे बह निकलता, किन्तु मस्तक का रेखा-जाल फिर वैसा का वैसा ही रह जाता।

वृद्ध चतुष्पथ की ओर मुड़ चला। किन्तु यहाँ वह कौतूहल से रुक गया। उसने उसी स्त्री को वहाँ पड़े हुए देखा। वृद्ध उसके पास बैठ गया। उसने झुक कर उसका मुख देखा। देख कर जैसे उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने एक बार हाथों से अपनी आँखों को मीड़ा और फिर दृष्टि सचेत करके उस स्त्री के मुख की ओर देखा। देख कर उसकी पलकें काँपने लगीं और उसने स्त्री के मुख को अपने उत्तरासंग से पोंछ दिया और ज्योंही धूलि हटी उसके होंठ काँप उठे और वृद्ध के शरीर पर एक आवेश-सा छा गया। उसने बुदबुदाया—कौन ? सनगा ?

फिर उसने आश्चर्य से आँखें फाड़ कर उसकी ओर देखा और करुण स्वर से प्रायः फिर चिल्ला उठा—सनगा !

किन्तु युवती नहीं बोली। वह मूर्छित ही थी। वृद्ध ने आकाश की ओर देख कर कहा—ब्रह्मा ! यह मैं क्या देख रहा हूँ। जिसको सुखी बनाने

के लिए मैंने इतना सब कुछ किया, वही आज एक अरण्यपथ पर अनाथ और मूर्छित पड़ी है? फिर उसने अत्यंत गूढ स्वर से कहा—क्रूर निरपेक्ष! तू जब आँधी चलाता है तब यह नहीं देखता कि कितने पुष्प धूलि में गिर कर बिखर जाते हैं। और फिर उसके होठों पर एक उद्वेग छा गया। उसने जैसे अपने आप से कहा—सौवीरों का सर्वनाश हो गया।

वृद्ध की पलकें आँसुओं से भीग गईं। उसने उन्हें पोंछ लिया और फिर उसने झुक कर उस स्त्री को कन्धे पर उठा लिया और धीरे-धीरे अत्यन्त कठिनता से उसे लेकर सरोवर के तीर पर लिटाया और उसके माथे पर उस शीतल जल के छींटे देने लगा।

स्त्री ने अर्द्धमूर्छितावस्था में कहा—पानी...

वृद्ध ने अपना उत्तरासंग भिगो कर उसके मुख में पानी डाला। कुछ देर में स्त्री चैतन्य हो गई। उसने पागलों की भाँति उठ कर कहा—मैं कहाँ हूँ! कहाँ हूँ मैं! और सामने एक पुरुष को देख कर भय से चिल्ला कर आँखें मीच लीं और फिर डरी हुई सी गिर गई।

वृद्ध ने धीरे से कहा—सनगा! उसका गला रुँधा हुआ था। स्त्री ने हाथों को थोड़ा सा हटा कर आँखों की कोरों से उस पुरुष को देखा और फिर वह उन्मत्त सी चिल्ला उठी—पितृव्य! मेरे पितृव्य!

वृद्ध ने उसे गले से लगा लिया और दोनों रोने लगे। स्त्री सशब्द रो रही थी जैसे आज वह अचानक ही स्वर्ग में आ गई थी। उसने भय से वृद्ध को पकड़ लिया और अब थर-थर काँपने लगी, जैसे जो वेदनाएँ वीभत्सा ने उसके भीतर भर दीं थी; वे भय जिन्हें वे अत्यन्त प्राणभय से प्रगट भी नहीं कर सकी थी अब वे एक-एक करके प्रगट होने लगे।

वृद्ध ने उसके सिर पर स्नेह से हाथ फिरा कर कहा—न रो सनगा। पुत्री! मेरी नयनतारा!

किन्तु उसके नेत्र स्वयं ही फिर सजल हो गये। वह दोनों देर तक चुपचाप रहे। अन्त में वृद्ध ने पुत्री को हटा कर कहा—दुहिते! रो नहीं!

धैर्य धर ! तुझे रोते देख कर मुझे लगता है कि मैं इस व्यथा को सह नहीं सकूँगा।

स्त्री ने आँसू पोंछ लिये। अब वह मुस्कराई। चेतना सुस्थिर हो गई थी।

वृद्ध ने गंभीरता से पूछा—तू यहाँ आई कैसे।

इस समय वह फिर पहले जैसा हो गया था और उसकी विह्वलता का स्थल दृढ़ता ने ले लिया था।

स्त्री फिर सिसक उठी।

वृद्ध ने कहा—नहीं दुहिते ! साहस ही इस जीवन का एकमात्र आधार है। जो अपने हाथ से साहस को छोड़ देता है, वह समुद्र में बिना पतवार की नौका में पड़ा हुआ, उत्ताल तरंगों की दया पर झटके खाता है और निर्मम लहरें उसे अत्यन्त क्रूरता से निगल जाती हैं।

स्त्री का रुदन बन्द हो गया। उसने कहा—आभीरों ने हमारे ग्राम में आग लगा दी। वे स्त्रियों पर बलात्कार करने लगे। उस समय मैं भाग चली। भागते-भागते मैं मूर्च्छित हो गई। फिर मुझे कुछ भी नहीं मालूम।

'तो,' वृद्ध ने कहा, 'वाग्मी का क्या हुआ ?'

'पितृव्य,' सनगा ने रोते हुए कहा, 'आभीरों ने उनकी हत्या कर दी।'

'और', वृद्ध ने कठोर स्वर से कहा, 'वशातल प्रकालन दास कहाँ गया ?'

'देव,' सनगा ने कहा, 'उसे मौसी ने वणिक श्रेष्ठि पृपध्र के साथ शूर्पारक भेज दिया था, क्योंकि इस बार मौसी वाग्मी को भी थोड़ा लाभ हो जाने की आशा थी।'

'तो वह भी गया सनगा,' वृद्ध ने सोचते हुए कहा। 'आभीर स्त्रियों और बालकों की निरीह हत्या कर रहे हैं। महानगर गया, राज्य गया,

गण की आशा गई। जाने दो। पुरुवंशी सौवीरों पर सर्वनाश छाया हुआ है तो मैं क्या करूँ? वयोवृद्ध आर्य सुहोत्र कहा करते थे कि सौवीरों में पहले सब समान थे। किन्तु आर्य जनमेजय के नागयज्ञ के बाद शिरीषक वंशीय नाग शिखण्ड ने सौवीरों को पराजित करके अपना कुलराज्य चलाया। उसे समाप्त करके सौवीरों ने गण स्थापित किया; किन्तु शुद्रक कुल ने एक कुल राज्य स्थापित किया। समय आया था कि फिर गण राज्य स्थापित होता किन्तु सौवीरों को आभीरों ने कुचल दिया। दुहिते! जिस दिन सरस्वती नदी के दक्षिण तीर पर बसे आभीरों ने मरुधन्व पार करके पूर्व में पग बढ़ाया था, मैंने तो बीस वर्ष पहले ही कह दिया था कि एक दिन यही बर्बर जो अपने को यादव कहने लगे हैं, सौवीर भूमि को भी पदाक्रांत कर देंगे। और वह सब कितना सत्य प्रमाणित हुआ। किन्तु—वृद्ध ने रुक-रुक कर कहा—जो समय रहते विचार नहीं करता, उसका यही परिणाम होता है। पुत्री! चल मेरे साथ—उसने चिन्ता भरे स्वर में कहा—चल सकेगी?

सनगा ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने उसे सहारा देकर उठाया। कुछ दूर चलने पर सनगा को स्फूर्ति सी लगी। उसने वृद्ध का हाथ छोड़ दिया। पूछा—कहाँ चलोगे पितृव्य! घर कहाँ है?

वृद्ध ने हँस कर कहा—घर? आकाश के मण्डप के नीचे समस्त पृथ्वी अपना घर है दुहिते! वहाँ वृक्ष चँवर डुलाते हैं। ब्राह्मण को भी कहीं अब स्थान है?

उस हास्य में एक कठोर व्यंग्य था जिसे सनगा समझी नहीं। वृद्ध ने कहा—नये घर में नई व्यवस्था है दुहिते, नया संविधान है......

× × × ×

वनप्रांतर की घनी हरियाली में दीर्घ वृक्ष उगे हुए थे। उनकी छाया में बसी हुई कुछ खाली जगह थी और उनमें फूँस पर बैठी चिड़िया अपना चहकना बन्द कर चुकी थीं। एक थकान ने जुगाली करती गायों को भी एक रात का आभास दे दिया था। दास जल्दी-जल्दी करके उन्हें

दुह कर दुग्ध एकत्र कर चुके थे, और वैश्या के गर्भ और ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न ओघवती उसे लेकर पाकशाला की ओर लेकर चली गई थी। उसे भोजन का प्रबन्ध करवाना था।

पट्टमहिषी शैखावत्या एक कुत्तक (कालीन) पर बैठी हुई चरखा चला रही थीं। वनवास करते हुए दो मास हो गये थे। प्रासाद से जो बचा कर लाईं उन्हीं में यह कुत्तक भी था, जिस पर एक समय सोलह नर्त्तकियाँ एक साथ नाचती थीं। पट्टमहिषी के वक्ष पर नील मणियों के हार पड़े हुए थे। साधारण केश विन्यास था। वे लगभग पैंतालीस वर्ष की थीं। उनका रंग गोरा था और वे ताम्बूल खा रही थीं। उनके पाँवों में सुवर्णाभूषण थे और कानों में हीरक जटित कुण्डल थे। मरकत काट कर हाथ की अँगूठी बनाई गई थी।

कुछ दूर पर कुमार वृषकेतु मोरगु के बने वस्त्र धारण किये दासों की ओर पीठ किये बैठा था। उसके वक्ष पर हिरण्य वस्त्र था। पाँवों में तिपटल उपानह था। वह रंगबिरंगा था और बकरे के सींग उसके अर्गला कर्णिका पर लगाये हुए थे। वह स्वभाव से ही मौन लगता था, और उसका निचला होंठ ऊपर के होंठ से कुछ आगे निकला हुआ था, जैसे कमल का एक दल स्तब्ध था, दूसरा थोड़ा फड़क आया था। उसके स्निग्ध मुख पर कनपटियों पर लटें झूलती थीं और शीश पर वह स्वर्ण मुकुट धारण किये हुए था। उसके कायबंध में खुँसे खड्ग की मूँठ पर वैदूर्य जटित थे।

कुमार शोणकेतु बाँई ओर लगभग दो सौ हाथ की दूरी पर कुएँ से पानी खींच रहा था। वह वही व्यक्ति था जो अभी थोड़ी देर पहले आकर विश्राम करके उठा था और अब कुएँ पर चला गया था। अभी उसने भल्ल छोड़ कर बाकी वही वस्त्र धारण कर रखे थे। उसका मुख अब दमक रहा था।

दक्षिण की ओर फूँस के कुटीर बन रहे थे और पूर्व की ओर कुछ

सुन्दर आश्रम थे। राजकुल के लोग उन आश्रमों में रहते थे और दास-दासियाँ कुटीरों में। कभी-कभी कोई इधर से उधर आता-जाता भी दिखाई देता था।

दास शैलाभ ने उल्काएँ जला दीं और जगह-जगह उन्हें लगाता चला गया। अन्धकार में अब लपटें फरफराने लगीं और उजाला काँपने लगा, जो पट्टमहिषी के काँपते चिन्तन के बहुत ही अनुरूप सिद्ध हुआ। सैरंध्री मुक्तवेणी इस समय कहीं एक कोने में बैठी धीरे-धीरे वल्लरी बजा रही थी। बजते हुए तारों की क्षीण ध्वनि धीरे-धीरे फैलती, सिकुड़ती और फिर अपने आप फैलती हुई लय हो जाती।

पैङ्ख्या दासी को आज सिर की पीड़ा ने व्याकुल कर रखा था। वह कुछ देर चुपचाप जाकर सो गई थी। अभी जागी थी और ओघवती के बुलाने पर वह भी अब काम करने चली गई थी और साग काट कर अब मांस काटने में लग गई थी। नया मृग मार कर लाया गया था। काटती और फिर नमक लगा कर रखती जाती। चर्मकार चक्र ने उसकी खाल उपानह बनाने को ले ली थी और सिर झुका कर प्रणाम किया था।

सुमल्लिक दास से कुमार वृषकेतु ने कहा—हाँ तो दास, फिर तो कह।

'देव !' दास ने मुस्करा कर कहा, 'प्रच्छाएडक नाग के ऐरक वंश ने अपने को क्षत्रिय कहना प्रारम्भ कर दिया है, और यक्रुल्लोमान के ब्राह्मणों को इतना दान दिया कि वे भी उन्हें क्षत्रिय मानने लगे हैं।'

वृषकेतु ने खिसिया कर कहा—और शूर्पारक के समस्त दानव व्यापारी अब वैश्य बन गये हैं। क्या-क्या और होने को है ?

'देव ! कुछ समझ में नहीं आता', सुमल्लिक ने कहा। वह अत्यंत वृद्ध था। उसकी भौंं भी श्वेत थीं। उसने फिर कहा—जिनमुनियों का प्रभाव बढ़ गया है। केसकंबल श्रवणों ने कल महानगर के बाह्य भाग में

अनेक अनुयायी बनाये जिनमें आभीर भी थे। सुमल्लिक ने अपनी बल्वज घास की चप्पल पर हाथ फेरा।

'हूँ। और!' वृषकेतु ने कहा।

'देव! शूद्रों ने आभीरों की सेना की बड़ी सेवा की। आभीरराज भुमन्यु ने अपनी स्त्री सौरभेयी के कहने से उन्हें सम्पत्ति का स्वामी होने का अधिकार दे दिया। अनिंद्य सुन्दरी मदनमंथिनी को आभीरराज ने अपनी प्रिया बनाया है और मदनमंथिनी के प्रभाव से वे दासों का यथा काम वध करने से त्रिवर्णों को रोक रहे हैं क्योंकि नर्तकी मदनमंथिनी किसी समय दासी पुत्री ही थी।'

'हूँ,' वृषकेतु ने सिर पकड़ कर कहा, 'और कुछ सुना है तुमने सुमल्लिक?'

'देव!' वह काँप उठा।

'कहो, सुमल्लिक! वृषकेतु सब कुछ सुनने को तत्पर है। और क्या संवाद है?'

'प्रभु! वह मैं नहीं कह सकूँगा,' वृद्ध ने काँपते हुए कहा, 'वह कह सकना मेरे लिए असंभव है। स्वर्गीय महाराज, आपके पूज्य पितामह ने मुझे मेरी माँ की गोदी से खरीद कर पाला था प्रभु! यह दास आपके पितामह के समय से इस कुल का दास है, आपके अन्न-वस्त्र खाकर पला है, वह मुझसे नहीं कहा जायेगा, मैं दास हूँ प्रभु! दास को तो इतना बोलने का अधिकार ही नहीं। देव! मैंने पुराने समय देखे हैं। मैं क्या मर्यादा को तोड़ सकता हूँ। नहीं प्रभु! नये दासों की भाँति मैं कृतघ्न नहीं हूँ। मैं मर्यादा नहीं तोड़ सकता। प्रभु मैं नहीं कह सकूँगा।'

'किन्तु मैं कहूँगा', वृद्ध के पीछे से गंभीर स्वर में सुनाई दिया। 'सुमल्लिक दास का रक्त अभी नष्ट नहीं हुआ है, अतः वह मर्यादा नहीं छोड़ना चाहता, किन्तु वृद्ध प्राहृट, सौवीर संहनन और सौवीरी माता फलका

का पुत्र, यह वृद्ध प्रावृट, कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा का अनुयायी ब्राह्मण, यह आङ्गिरस गोत्रीय आर्य, तुम्हें सब कुछ सुनायेगा।'

कुमार वृषकेतु वृद्ध प्रावृट को देख उठ खड़ा हुआ। उसने देखा वृद्ध के पीछे एक लड़की खड़ी थी। वृद्ध कहता गया—सौवीर महाराज वन्हि-केतु की महिषी शैखावत्या वन में, अपने वृषकेतु और शोणकेतु नामक पुत्रों के साथ रहती हैं। स्वर्गीय महाराज की परिवक्ती पत्नी दमयन्ती ने प्राण त्याग दिये, किन्तु उनकी प्रिय वावाता पत्नी सुवर्चला ने आभीर-राज भुमन्यु को वर लिया और वे उसकी स्त्री हो गई हैं। सौवीरों का मुख उज्ज्वल हो गया है।

वृद्ध बैठ गया। महिषी ने बैठे-बैठे ही सुना और चर्खा छोड़ दिया। उसे आकर सैरन्ध्री मुक्त वेणी उठा ले गई।

उन्होंने वहीं से कहा—बड़ा विलम्ब हुआ आर्य! मैं तो समझी कि पथ में कोई बाधा आ पहुँची होगी।

वृद्ध ने कहा—नहीं पट्टमहिषी! मुझे सनगा मिल गई थी।

कुमार शोणकेतु जल का चर्मपात्र भरे ला रहा था। उसी में वह पी भी चुका था। इस लड़की को देखकर चौंक उठा। उसने कहा—पितृव्य! यह कौन है?

वृद्ध गंभीर स्वर से ही कहता गया—एक अनाथ बालिका है कुमार! आज न जाने ऐसी कितनी कुमारियाँ सौवीर देश में व्याकुल गृहहीन होकर भटक रही हैं। वृद्ध ने बैठ कर कहा—जब मनुष्य दूसरे को दास बनाने की बर्बरता से पराजित हो जाता है तब वह पहले वृद्धों, बालकों और स्त्रियों पर प्रहार करता है जिससे उसका उठा हुआ खड्ग ऐसा आतंक फैला दे कि फिर किसी में शीश उठाने की शक्ति ही न रह जाय!

कुमार शोणकेतु ने जैसे याद करते हुए कहा—जब मैं उधर से आ रहा था, यह लड़की मुझे पथ पर पड़ी मिली थी। यह मूर्च्छित थी।

वृद्ध ने आँखों को लगभग मींच ही लिया जैसे उसे यह सुनने की विल्कुल आशा ही नहीं थी। परन्तु उसे आश्चर्य भी हुआ कि ऐसी दयनीय बात यह 'युवक निस्संकोच आखिर कह कैसे रहा है कि उसे अपने शौर्य का मूल्य ही नहीं मालूम। उसने केवल सिर हिलाया। उसका नीचे का होंठ तनिक निकल आया और लम्बी नाक अब और भी अधिक लम्बी दिखाई देने लगी। उसके माथे पर एक सफेद लट झूल आई। कुमार वृषकेतु ने उल्का के प्रकाश में स्पष्ट ही उसे देखा। कुमार शोणकेतु ने कुछ नहीं देखा। वह अब भी सनगा की ओर देख रहा था। इस समय सनगा सुन्दरी दिखाई दे रही थी और कुछ भयभीत सी भी थी।

कुमार वृषकेतु ने शोणकेतु से कहा—तुम्हें पथ में यह मूर्च्छित मिली और तुम एक स्त्री की ऐसी संकट वेला में भी सहायता नहीं कर सके?

'रहने दो वृषकेतु', वृद्ध ने कहा, 'वह श्रमणों में जाकर कुछ न कुछ तो सीखेगा ही न?' वृद्ध ने स्वर बदल कर कहा—खड्ग से विजय प्राप्त करने वाला मनुष्य यदि अंधा होता है तो पराजित होकर भागने वाला कभी-कभी हृदयहीन और निर्लज्ज भी हो जाता है।

कुमार शोणकेतु मुस्कराया। उसने कहा—जो यह समझता है कि मदिरा पीकर वह अपने आपको भूल सकता है, उसे स्मरण रखना चाहिये कि मद दूर होने पर उसकी व्यथा पहले से कहीं अधिक बढ़ जाती है।

अचानक सनगा ने कहा—यदि स्त्री मदिरा है तो पुरुष उसके ऊपर उफन आने वाले बुद्बुदों के समान है। उसके गर्व में तरलता भी नहीं, केवल वायु होती है।

कुमार वृषकेतु ने ठहाका लगाया, वृद्ध ने किञ्चित मुस्करा कर पीछे की ओर मुड़कर देखा कि वाग्मी ने बालिका को शिक्षा दी है। वह एक पुत्तलिका नहीं है। उसकी आत्मा को संतोष हुआ। परन्तु उसका मुख

अंधकार में था और उसकी मुस्कान किसी को दिखाई नहीं दी। इसी समय पट्टमहिषी ने निकट आकर कहा—शोण !

'अम्ब !' शोण ने कहा।

महिषी ने मुस्करा कर कहा—शोण ! स्त्रियों की निंदा करते समय यह न भूल कि तू भी एक स्त्री का पुत्र है, मैं, तेरी जननी भी एक स्त्री ही हूँ। उनको दुहरा आनन्द था। पुत्र के लिए प्रत्येक माता एक पुत्र-वधू चाहती है, उसे स्त्री का अनुभव कराने को, किन्तु पुत्रवधू आकर पुत्र का स्नेह बाँट लेगी, यह भय प्रत्येक माता के मन में रहता है। जननी ने उस समय पुत्र की दृष्टि में एक नयापन देखा। उनका वह द्वैत आनन्द उनके भीतर ही रहा। उन्होंने मुस्करा कर पुत्र से कहा—कहीं मुझे ऐसा न लगे कि वन काटने वाली इस कुठार में लगी लकड़ी भी, एक दिन इसी वन से आई थी। इस वार 'इसी वन' कहते हुए उन्होंने अपने वृद्ध की ओर इंगित किया।

वृद्ध ने कहा—सनगा ! पट्टमहिषी को प्रणाम कर !

सनगा ने दण्डवत किया। राजमहिषी ने कहा—'सौभाग्यवती भव !' फिर मुड़ कर कहा—अमात्यप्रवर ! वालिका का परिचय ?

वृद्ध ने कहा—इस वालिका का पालन मैंने ही किया है। इसे मैंने अविदग्ध ग्राम में रख छोड़ा था। जब बेचारी की माता की मृत्यु हुई थी, तब से यह अनाथ ही थी। आभीरों ने इसका ग्राम भी लूट लिया।

चिंता ने फिर पंख खोले और ऐसे मँडराने लगी, जैसे चैत्र के अंतिम दिनों में मध्याह्न के लम्बे मौन में कोई मक्खी भन-भन करके आती ग्रीष्मा का भय दिखाने लगती है। उस भन-भन से, फूटते कुङ्मल और गंधभरे समीर के झकोरों का आनन्द भी एक आते आतंक से ग्रस्त हो जाता है।

अंधकार में वे सब खड़े रहे। केवल कुमार शोण हट गया। कुछ ही देर में वह लौटा, तो उसके दाँयें हाथ में एक भल्ल था, बाँयें में एक

उल्का जगमगाता प्रकाश फैला रही थी। अब दूर का क्षीण प्रकाश इस तीव्र आलोक के सामने धीमा-धीमा अंधकार बन गया।

कुमार शोणकेतु ने भल्ल झुकाया और वृद्ध अमात्यप्रवर प्रावृट के चरणों पर उसे रख दिया। उल्का के प्रकाश में कटा सिर चमका। जननी चिल्लाई—यह क्या है! सनगा ने आँखें फाड़ कर देखा। कुमार वृषकेतु तनिक झुका और वृद्ध प्रावृट झुका का झुका रह गया।

कुछ देर वे सन्नाटे में पड़े रहे।

फिर वृद्ध ने कहा—यह क्या है कुमार?

'देव! यह मुखर वंश का कुलीन भूस्वामी बाभ्रवायणि है जो दस्यु और वनचरों को आतंकित करता था। एक दिन यह स्वर्गीय महाराज वह्निकेतु के हाथियों की देख-रेख करने पर महापीलुपति के पद पर था, किन्तु आभीरराज के सामने जब इसने अपना आत्मसम्मान खोकर सिर झुका दिया तब उन्होंने दस्युओं अर्थात् हम लोगों को जीवित पकड़ लेने को महादौःसाधसाधनिक बना दिया था। इसी के कौशल ने वृहद्वती को बन्दिनी बना लिया था। मैं उसी बाभ्रवायणि, विश्वासघाती का सिर काट कर ले आया हूँ। उस समय इसके बीस अंग-रक्षक वहाँ उपस्थित थे।

वृद्ध की आँखे भर आई। उसकी पुत्री वृहद्वती शत्रुओं के हाथ में ही फँसी रह गई थी। यह उसे अब याद आ गया। सनगा से बृहद्वती अपरिचित नहीं थी। वह ग्राम में उसका नाम निरंतर सुनती थी। वशातल प्रकालन उसे महानगर के विषय में कुछ न कुछ सुनाया करता। वह बड़ा चतुर दास था। उसकी अपनी कथा बड़ी दुखभरी थी परन्तु वह सदैव कुछ सोचा करता था।

वृद्ध ने कहा—धन्य है शोण! तू धन्य है कुमार!

शोण ने मुस्करा कर सिर झुका लिया और फिर न जाने क्यों उसने आँख की कोर से सनगा की ओर देखा कि देखें उस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। सनगा समझ गई थी। कुमार ने देखा, वह व्यंग्य से मुस्करा

रही थी जैसे कोई बात नहीं थी, थी एक नितांत साधारण सी। उसका मन भीतर ही भीतर कचोट उठा।

पट्टमहिषी ने लम्बी साँस लेकर कहा—सब बच गये अमात्यप्रवर प्रावृट ! केवल बृहद्वती नहीं आ सकी। वह कितनी सुन्दरी है। अभी उसका दुख मिटा भी नहीं था। आयु ही क्या थी कि उसका स्वामी इस प्रकार अकाल ही उसे अकेला छोड़ कर संसार से चला जाता। किन्तु कौन जानता है कि क्या होने को है ? बेचारी पतिहीन रह गई। वे दुःखित स्वर से कहती-कहती रुक गईं। संभवतः उनकी आँखें भी नम हो गई थीं। कुमार वृषकेतु का हृदय अथाह व्यथा से भर गया था। बृहद्वती आँखों के सामने आ खड़ी हुई थी और उसके सामने मुस्करा रही थी।

किन्तु कोई नहीं बोला। कुमार शोण ने पुकारा—सुमल्लिक !

सुमल्लिक पास ही था। 'क्या है प्रभु ?' उसने कहा।

भल्ल देकर कुमार शोणकेतु ने कहा—इसको गाड़ दो और भल्ल मेरी शैय्या के सिरहाने रख देना।

× × ×

महानगर में सुन्दर राजभवन में इस समय दीपमालिका जगमगा रही थी। महानगर के चारों ओर परिखा थी और प्राकार खिचा हुआ था। राजपथ प्रशस्त था और दूकानें रात के समय सजी हुई थीं जिनमें आभीर तरुणियाँ क्रय कर रही थीं। उनके साथ कठोर आभीर सैनिक थे। अब वे ग्वालों की भाँति नहीं, क्षत्रियों की सी सज्जा धारण करते थे। उनके पाँवों में जंघाओं तक को ढँकनेवाले पुटबद्ध जूते थे। जिनके किनारे रंगबिरंगें थे और सिरों पर शिरस्त्राण थे। उनके वक्ष पर लौह कवच चमचमा रहे थे और वे आभीर सैनिक मदोद्धत से पण्यों में घूम रहे थे। उनकी स्त्रियाँ अधोवासक घुटनों तक लटकते पहिने थीं किन्तु उन पर हिरण्य का कसीदा था, वे भारी थे। उनमें से, चलते समय, उनकी जंघाएँ दिखाई देतीं और जब वे बैठती तो कटि प्रदेश पर बँधी मेखला चमकती। इस अधोवासक

का बिचला छोर वे पीछे खोंस लेतीं और इस प्रकार सामने से उनकी जंघाओं और निम्नोदर प्रदेश का उतार-चढ़ाव स्पष्ट दिखाई देता। ऊपर नग्न नाभि तक चढ़ती हुई रोमराजि परिलक्षित होती। वे हाथों में और पैरों में कुहनियों और पिण्डुलियों तक क्रमशः हाथी दाँत, लाख, और पंचधातु के आभूषण पहनतीं। वक्ष प्रदेश पर हार और कौड़ी की पिरोयी मालाएँ धारण करतीं। कुहनी से ऊपर के स्थान पर सुवर्ण बँटे हुए वलय पहनतीं। उनकी समस्त पीठ नग्न रहती। केवल स्तनों को चूचुक समेत ढँककर ऊपरी भाग को छिपाये कौंच को दबाकर सिये स्तनमंडल दिखाई देते और पीछे अनुवातकरण जाकर पीठ पर बँध जाता। जब कभी वे भुजाएँ उठातीं तो उनके भुजमूल में रोम दिखाई देते। वे स्वस्थ और दृढ़ स्त्रियाँ पाँवों में ऊदविलाव या उल्लू के चमड़े से बनाये उपानह पहनतीं। उनके सिर के केश ऊपर की ओर बँधे होते और उनमें वे हिरण्य वस्त्र को बाँधकर बाँये स्कंध पर से लटका कर नितंबों से ऊपर खोंस लेतीं। स्तनमंडल के वस्त्र में से स्तनों का निचला हिस्सा निकला रहता। वे सैनिकों के साथ उनकी पीठ पर हाथ रख कह स्वच्छंदता से घूमतीं। सौवीर देखते और क्रोध से भीतर ही भीतर जलते किन्तु भय से आभीर स्त्रियों से कुछ भी नहीं कहते। वे स्त्रियाँ मदिरा पीकर मस्त हो जातीं तो नितंबों पर हाथ मार-मार कर हँसतीं और चाहे जिस सौवीर की दूकान से खाद्य पदार्थ उठाकर खाने लगतीं। सौवीर इस पर बिगड़ते, किन्तु उनके सैनिकों को देख चुप रह जाते। आभीर सैनिक महानगर की नर्त्तकियों के अर्धनग्न शरीरों से जब विलासपूर्वक खेलते तब वे स्त्रियाँ निर्लज्जता से हँसतीं और उस समय जनभाषा छोड़ अपनी भाषा में बातें करने लगतीं जिसमें अब लगभग समस्त जनभाषा का ही प्रभाव था।

केवल ब्राह्मण वैदिक संस्कृत बोलते, किन्तु जनसाधारण में लौकिक संस्कृत साहित्यिक भाषा थी और जन भाषा पालि प्रचलित हो रही थी। संस्कृत

भाषा प्रायः सिंधु प्रदेश से मगध तक निर्विवाद रूप से समझ में आती थी।

महानगर में पांसदुकूल, तिरीट, कृष्ण मृगचर्म की पट्टी से बड़े वस्त्र, कुशचीर, वाकाचीर पहने ब्राह्मण और श्रमण कहीं-कहीं घूमते दिखाई देते। वे भिन्न-भिन्न संप्रदायों के लोग थे जो राजगृह, साकेत, वाराणसी, वैशाली और पुष्कलावती के समान ही इस सुन्दर महानगर में बसे हुए थे। धनिकों के प्रशस्त मकान कई मंजिलों वाले होते और ईंटों और लकड़ी के बने होते।

राजभवन में विभिन्न सिंहासन, सेज और विशाल दर्पण थे। अनेक प्रकार के रत्नों से भित्तियाँ सजाई हुई थी। कहीं-कहीं प्रहरियों में धनुर्धारी ब्राह्मण भी दिखाई दे जाते थे। आभीरराज भुमन्यु लम्बा व्यक्ति था और उसका वक्ष प्रशस्त था। वह कौशेय पहने था। उसके पाँवों पर पुटबद्ध थे और उसमें रत्न टँके हुए थे। उसकी नाक बहुत लम्बी नहीं थी, परन्तु छोटी भी नहीं थी। उसके केश पीछे की ओर काकपक्ष की भाँति कटे हुए थे। सिर पर हीरक जटित मुकुट था और अङ्गुलित्राण वह इस समय भी पहने था। दो दण्डधर द्वार पर उपस्थित थे। उसकी शैया पर रत्नों से सजा आस्तरण कटि्टस बिछा हुआ था। और भूमि पर चिलिमिका थी। चित्तकों से ओर पड़े विस्तर ढँके थे। उसके समीप ही इस समय व्याघ्रवंशीय क्षत्रिय गंधकाल खड़ा था। वह सौवीर था। उसके मुख पर दाढ़ी थी, जिसे उसने कानों की ओर चढ़ा रखा था। वह शिर पर उष्णीश पहने था। और बहुत सी चुनन और सिलवटेंदार शतवल्लिक अधोवासक पहन उसने चोलवट्टी को कटि पर बाँध रखा था। उसकी भौंहें कुटिल थीं। मुख कुछ फटा हुआ था और देखने पर वह एक तेंदुआ जैसा लगता था। जैसे कब यह उछल कर वक्ष पर सवार हो जायगा, इसका कहना नितांत असंभव है। उसकी कटि के दोनों ओर चूतड़ों को सजाती मरकत की मूँठ

वाली तलवारों को ढँके रक्तवर्ण म्यानें लटकतीं और वह अत्यन्त संतुलित भाषा और स्वर का प्रयोग करता।

उसने धीरे से कुछ कहा, जिसे सुनकर आभीरराज भुमन्यु ने सिर उठाया। इसी समय दो मागधी दासियों ने एक स्त्री को पकड़कर प्रवेश किया। उसके दोनों हाथों को उन्होंने पकड़ रखा था और पीछे पारसीक महल्लिका आ रही थी। भुमन्यु ने देखा। स्त्री अत्यन्त सुन्दरी थी। केवल रो-रोकर नेत्र सुजा लिए थे। उसकी कवरी बिखर गई और उसने उसका वक्ष ढँक लेने का प्रयत्न किया क्योंकि वैसे उसे नग्न-वक्ष कर. दिया गया था। उसके हाथ पीछे बँधे हुए थे।

उसके पुष्ट उन्नत स्तन उसके केशों में छिप नहीं सके थे और उसके मुख पर भयानक ग्लानि थी। वह एक अधोवासक पहने थी, जिसका एक छोर खुल गया था किन्तु मेखला में अटक जाने से रुक गया था। उसमें से झलकती उसकी जंघा और फिर पाँव तक का सौन्दर्य फूटा पड़ रहा था। और उसके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। वह लज्जा से गड़ी जा रही थी।

आभीरराज भुमन्यु ने वह रूप देखा तो अचकचा कर मुग्ध दृष्टि से देखने लगा।

'गंधकाल!' भुमन्यु ने उठते हुए कहा, 'यह सौवीर स्त्री है!' वह उस स्त्री के बिल्कुल पास चला गया और उसने उसके वक्ष पर बिखरे बालों को उसकी पीठ पर डाल दिया। और उसके नग्न वक्ष को अपलक निहारता रहा। महल्लिका और दोनों मागधी दासियों के मुख पर हल्की-हल्की मुस्कराहट आ गई क्योंकि आभीरराज ने तुरन्त अपना मदिरापात्र भर लिया और फिर उसने सौवीर स्त्री के कंधे पर हाथ रखा। स्त्री ने झपट कर हाथ को काट खाया।

गंधकाल ने देखा आभीरराज भुमन्यु ने स्नेह से उस दंतक्षत को देखा और अपने हाथ को उठाकर चूम लिया। स्त्री के मुख से फूत्कार फूट निकला। उसके नेत्र आग्नेय हो गये और गंधकाल ने झुककर कहा—

प्रभु ! यही है वन्हिकेतु के अमात्य प्रावृट की दुहिता वृहद्वती । बड़ी हठीली है ।

आभीरराज ने घूरा और लम्बी साँस लेकर कहा—अद्भुत सुन्दरी है ।

वह इस समय मदिरा पी चुका था और उस स्त्री का उन्नत यौवन उसे व्याकुल किये दे रहा था । निर्दय काम-लोलुप स्त्री, पुरुष कभी सरल साथी नहीं चाहते । वे प्रतिस्पर्धी चाहते हैं जिन्हें बलपूर्वक उन्हें दबाना पड़े और विजय की क्रूरता उनकी बर्बरता को तृप्त करती रहे ।

'यह विधवा है', गंधकाल ने फिर कहा ।

'विधवा है ?' आभीरराज ने आँखें फाड़ कर कहा । 'ब्रह्मा अत्यन्त निर्दयी है । यह रूप और यौवन !' अचानक उसने कहा—गंधकाल ।

'महाराज !' उसने झुककर कहा ।

'यह कौन वर्ण की है !'

'देव, यह ब्राह्मणी है ।'

'अति उत्तम । इसके गर्भ से जो पुत्र होगा उसे ही मैं अपना उत्तराधिकारी बना दूँगा । उससे तुम्हारे ब्राह्मण मेरे अधीन हो जायेंगे ।'

'देव ! ब्राह्मणी का दूसरा विवाह केवल अपने देवर से संभव था । प्राचीनकाल की सी परिपाटी अब नहीं रही । अब नियोग संतान भी उतना आदर नहीं पाती ।'

आभीरराज ने फिर एकटक उसके श्वास से उठते-गिरते वक्ष को देखना प्रारम्भ कर दिया और बीचोबीच में वह मदिरा भी पीता जाता ।

वृहद्वती के लिए असह्य हो गया । उसने कहा—ऐ आभीर ! क्या बड़ी-बड़ी आँखें निकालकर घूर रहा है । पशु ! तेरी कोई जननी नहीं है ?

गंधकाल ने हाथ बढ़ाकर धीरे से कहा—वृहद्वती ! आभीरराज !! उसके स्वर में आतंक की छाया थी ।

वृहद्वती ने घृणा से कहा—मेरा नहीं, तेरा विजयी है विश्वासघाती ।

तूने महामात्य की योजना से भयभीत होकर इसे बुलाया कि तुम सब कुल-स्वामी बने रहो।

इससे पहले कि गंधकाल कुछ कह सके, आभीरराज ने कहा—कितना मधुर शब्द है इसका गंधकाल! अहाहा! तुमने कभी नील नीरद में चमकती सौदामिनी को गाते सुना है? नहीं न! तो इसे देखो न? देखो गंधकाल! इसका यौवन कैसा गम्भीर है! यह मुझे एक अत्यन्त वीर बालक दे सकेगी।

वृहद्वती ने कहा—नीच! इस गंधकाल की पुत्री मुझसे भी कहीं अधिक सुन्दरी है।

'सच?' आभीरराज ने कहा, 'क्यों गंधकाल! तुम क्षत्रिय हो। इसे जाने दो। उसी को हम महिषी बनायेंगे।'

गंधकाल का मुख विवर्ण हो गया। उसने झूठी हँसी हँस कर कहा—प्रभु! यह बालिका झूठ बोलती है। मेरी पुत्री छः बालकों की माता हो चुकी है।

'जाने दो, जाने दो! इसके कितने बालक हैं?' आभीरराज ने कहा।

'एक भी नहीं, देव,' गंधकाल ने कहा।

'अहाहा', आभीरराज ने कहा, 'हम आभीरों में ऐसी सुन्दरी होती हैं तो प्रत्येक पुरुष उसकी वंदना करता है। विधवा! क्या सौवीरों में ऐसा रूप व्यर्थ नष्ट हो जाता है? गंधकाल। यह तो बड़े पुष्ट बालकों को जन्म दे सकती है।'

आभीरराज की बात अभी पूरी नहीं हुई थी कि एक चर ने प्रवेश किया।

'क्या है?' आभीरराज ने पूछा।

इससे पहले कि कोई रोके चर ने कहना प्रारम्भ किया—देव! समाचार गुह्य है।

'यहाँ कोई नहीं हैं चर,' आभीरराज ने कहा, 'वह स्त्री मेरी स्त्री होनेवाली है, तुम निर्भय होकर कहो।'

चर ने विनत शीश कहा—ब्राह्मण प्रावृट छिप-छिपकर प्रजा में आग फूँक रहा है, और कुमार शोणकेतु आज......

चर को रुकते देख कर आभीरराज ने चिल्ला कर कहा—शीघ्र कहो।

चर ने लड़खड़ाते हुए कहा—प्रभु! कुमार शोणकेतु आज मुखरवंश के आर्य कुलीन, महादौःसाधसाधनिक वाभ्रवायणि का सिर काट कर ले गये।'

'ले गये?' आभीरराज ने आश्चर्य से पूछा, 'कहाँ ले गये?'

'प्रभु!' चर ने कहा, 'यह पता नहीं चला!'

'तो तुम क्या करते हो? महादौःसाधसाधनिक वाभ्रवायणि का सिर वह काट कर ले गया। छोड़कर भी नहीं गया। इसका अर्थ है, वह तरुण भी वीर है! गंधकाल? क्यों वह वीर है न या यहाँ के से सौवीरों की भाँति ही है?'

गंधकाल ने निर्लज्जता से कहा—ऐसा कोई बहुत वीर तो नहीं, परंतु फिर भी बड़ा वीर है। स्वर्गीय महाराज वह्निकेतु अत्यंत वीर थे।

और गंधकाल ने अत्यंत रहस्यमय ढंग से आभीरराज भुमन्यु की ओर देखा। आभीरराज क्षण भर उस दृष्टि को पढ़ता रहा। फिर उसने कहा—चर। तू जा सकता है।

चर चला गया। आभीरराज ने गंभीरता से सोचते हुए कहा—स्त्री! क्या तू मेरा वीर्य धारण नहीं करेगी? मैं तुझसे एक पुत्र चाहता हूँ। आभीर यहीं रहते हैं। एक दिन वे विदेशी अवश्य थे। किंतु अब हममें इतना यादव रक्त मिल गया है कि हम भी प्रायः यादव ही हैं। मद्र के ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के समान ही हमें भी स्वीकार कर लिया है। मैं यह परस्पर का जातीय द्वेष मिटा देना चाहता हूँ।

स्त्री ने कहा—बर्बर, नीच, जघन्य पशु !

गंधकाल ने चतुरता ले बृहद्वती की ओर करुण दृष्टि से देखा और फिर ऐसा बन गया जैसे वह आभीरराज से भयभीत था। आभीरराज ने कहा—तू क्रुद्ध है अवश्य स्त्री ! किन्तु मैं तेरे पिता को भी उच्च पद दूँगा। आभीरों की स्त्रियाँ पहले मुक्त थीं। परन्तु अब यदि वे दूसरे से गर्भ धारण करतीं हैं तो पति से आज्ञा लेनी पड़ती है। और पति इसमें प्रायः आज्ञा दे देते हैं। परन्तु तू हमारी स्त्री होगी, जिस पर हमारे अतिरिक्त किसी का भी अधिकार नहीं होगा।

बृहद्वती ने कठोरता से कहा—आज यदि सौवीर भूमि में गंधकाल जैसे नीच और कुत्सित कुत्ते न होते, तो रे जंगली पशु ! तू ब्राह्मणी से ऐसे शब्द कह सकता था ? ब्राह्मण तेरी खाल खींचकर तुझे टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तों को खिला देते। तेरा ऐसा दुस्साहस कि तू पृथ्वी के कुलीन, देवताओं से ऐसा कह रहा है ? यदि कुरु पाञ्चाल होता तो तू कीड़ों की भाँति कभी का मारा जा चुका होता। नीच जघन्य ! और वह हँसी और उसने व्यंग्य से कहा—गंधकाल ! देख रहे हो ? पाप सदैव ही फल नहीं देता। मैं प्राकृट ब्राह्मण की दुहिता हूँ। उस अमात्य की पुत्री हूँ जिसने महाराज वह्निकेतु के स्वर्गवास के बाद यह घोषणा की थी कि एक कुल के स्थान पर अनेक कुलों का गण बनेगा, किंतु तुम लोग जो अनेक कुलों का गण बनाना चाहते थे, इस बात को नहीं सह सके कि मेरे पिता शिल्प-श्रेणियों को नया अधिकार देना चाहते थे। तुम ब्राह्मणों को मिटाकर श्रेष्ठि शासन चाहते थे, यह असंभव है गंधकाल। मेरे पिता ने त्याग और बलिदान से दासों तक का स्नेह प्राप्त किया है। तुम समझते हो वे चुप रहेंगे जो सिंहों की भाँति चले गये हैं और जिनके स्थान पर बैठ कर तुम कुत्तों की भाँति जूठन खा रहे हो ?

गंधकाल चिल्लाया—बृहद्वती ! मेरी ही करुणा से तू अभी तक

जीवित है अन्यथा तुझे उपकुलों ने काटकाट कर चील-कौओं को खिला दिया होता।

'ठहरो गंधकाल,' आभीरराज ने कहा, 'यह विवाद व्यर्थ है। इस समस्त वाक्‌युद्ध में मैंने इस सुन्दरी की दो वातें अभी और देखी हैं। एक तो यह कि यह बहुत गौरव से बोलती है, और किसी भी शासक के साथ बैठने के योग्य है। इसमें गरिमा है। तुम जानते हो, स्त्री की निर्भयता से ही पुत्र भी निर्भय होता है। और यह सब बहुत अच्छा है! दूसरी बात यह है कि इस स्त्री का जघन-स्थल बहुत ही स्निग्ध है और स्त्रियों में मुझे यह अत्यंत प्रिय है......

आभीरराज बात पूरी नहीं कर सका था कि बृहद्व्रती ने उछलकर उसके मुँह पर एक लात दी जिसके कारण वह लुढ़क कर नीचे गिर गया। उसी समय दासियों ने हाथ बँधी हुई बृहद्व्रती को नीचे गिरा लिया और महल्लिका ने उसके वक्ष पर अपना तिपटल जूता रख कर मसल दिया जिससे उसके स्तन छिल गये और उनमें से रक्त चू उठा। उस भयानक पीड़ा से बृहद्व्रती की आँखों में आँसू आ. गये, परन्तु वह क्रोध से व्याकुल थी। आभीरराज को गंधकाल ने उठाया। बात करने के बीच में आघात होने से उसकी जीभ दाँतों के बीच में कुछ कट गई। रक्त भी आ गया। उसने उठ कर थूका और फिर भित्ति पर से उतार कर उसने चर्म का कोड़ा फहराया। क्षण भर में दासियाँ हट गईं। आभीरराज ने कोड़ा घुमाकर बृहद्व्रती को मारना प्रारम्भ किया। उसके अङ्गों पर चमड़े ने खाल को खींच डाला। और उसके वस्त्र फट गये। उसके नितम्बों पर से वस्त्र चिथड़े-चिथड़े हो गया और वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। आभीरराज ने कोड़ा फेंक दिया।

महल्लिका के इंगित पर दासियाँ बृहद्व्रती को उठाकर ले चलीं। आभीरराज क्रोध से भभकता हुआ खड़ा रहा। फिर उसने गंधकाल को

घूरा। गंधकाल ने धरती पर पड़े मुकुट को उसे देते हुए कहा—ग्राभीर-राज! इसे फिर पहन लें।

गंधकाल के होंठ कुटिलता से काँप उठे।

× × ×

कुत्तक पर बैठ कर महिषी शैलावत्या, दोनों कुमार, वृद्ध ग्रमात्य ग्रौर सनगा भोजन करने लगे। सैरन्ध्री मुक्तवेणी ने प्रकाश [निकट लाकर रख दिया। वृद्ध सुमल्लिक दूर जाकर बैठ गया। पैङ्ख्या दासी जाकर फिर सो गई थी। ग्रोघवती परोसने के लिए सब भोजन-सामग्री एकत्र कर चुकी थी। स्वयं पट्टमहिषी शैलावत्या परोस रही थीं। पहले वे लोग सनगा के विषय में पूछते रहे। फिर ग्रत्याचारों की बात चल पड़ी। मृग मांस परोसा जाने लगा। वृद्ध प्रावृट ने कहा—भोजन सम्मान का विषय है, कुमारो। सौवीरों में पहले से ही भोजन को मनुष्य का ग्राधार ही नहीं, सम्मान का विषय भी चुना गया है। ग्राभीरों ने ग्रत्याचारों की पराकाष्ठा कर दी है। चारों ग्रोर हाहाकार मचा हुग्रा है। ग्राज जब भोजन करता हूँ तो ध्यान ग्राता है कि न जाने कितने मनुष्य विवशता से ग्राक्रांत होकर भूखे ही सो गये होंगे!

चिन्ता की बिजली विचारों के मेघों से टकराई, कौंधी ग्रौर एक हुमसती नीरवता छोड़ कर छिप गई किंतु पथ पर ग्रालोक फिर भी नहीं ग्राया। कुमार शोणकेतु पर स्यात् कम प्रभाव पड़ा था क्योंकि वह इतना विनीत नहीं था जितना वृषकेतु। वृषकेतु का सिर झुक गया था। शोण-केतु का समय श्रमणों में बीतता था ग्रौर वे ग्रनेक प्रकार की बातें किया करते थे। वृषकेतु वृद्ध ग्रमात्य को ग्रत्यंत चतुर समझता था ग्रौर उसका ग्रतीव सम्मान भी करता था। सनगा धीरे-धीरे खा रही थी। इस समय हाथ, मुँह, पाँव धो लेने के कारण उसमें स्फूर्ति ग्रा गई थी ग्रौर काफी भूखी होने के कारण वह डट कर खा रही थी। उसको ग्रचानक ही भय हुग्रा कि कहीं वह ग्रधिक तो नहीं खा रही है, इसलिये उसने छिपी दृष्टि

से इधर-उधर देख लिया। किंतु कोई भी नहीं देख रहा था। अतः वह फिर जल्दी-जल्दी खाने लगी। वृद्ध अमात्य की बात को सुनकर जो सन्नाटा खिंचा उसने सबके गलों को भींचने का यत्न किया। किन्तु सनगा पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। उसने मृग मांस का वह टुकड़ा खाकर ऐसी चुस्की भरी जैसे बड़ा स्वादिष्ट था वह, फिर अपनी उँगलियाँ चाटीं। पट्ट-महिषी ने देखा तो मुस्करा कर कहा—क्यों सनगा? अच्छा है न?

'बहुत स्वादिष्ट है', सनगा ने मुस्करा कर लजाते हुए उत्तर दिया।

'और ले', माता ने कहा।

'नहीं, नहीं, इसलिए नहीं कहा,' सनगा ने हाथ हिला कर कहा, 'सबको चाहिये।'

महिषी ने कहा—तू सबसे छोटी है यहाँ, तुझे क्या दूसरों की चिंता है? वह तो हम सब ठीक कर लेंगे, हाथ हटा।

'नहीं अम्ब रहने दो', सनगा ने फिर कहा, पर हाथ हट गया था। शोणकेतु मुस्कराया।

सनगा ने कहा—नहीं देवी! मैं इतना खाती नहीं। लोग समझेंगे मैं बहुत खाती हूँ।

इस बात पर सब हँस दिये किंतु वृद्ध अब भी अपनी ही चिंता में मग्न था। सनगा ने कहा—पितृव्य! मैं अधिक तो नहीं जानती किंतु ग्राम में आचार्य श्रुतश्रवा मेरे ऊपर बहुत कृपा रखते थे। मैं उन्हें पितामह कहती, वे मुझे पढ़ाया करते। उन्हीं से मुझे कुछ मालूम हुआ है।

'क्या?' वृद्ध ने कहा!

'यही कि प्रजा पर पहले ही क्या कम अत्याचार होते थे। जब नागों ने राज्य किया था तो अपने विषय में ब्राह्मणों को विवश करके पुराणों में अपने नाम लिखा लिये थे। वे कहते थे उन्हीं दिनों कुछ शाकद्वीपी ब्राह्मण आये थे और वे व्यूहवाद मानते थे। उनकी विचारधारा को भी स्वीकृत किया गया?

वृषकेतु ने देखा लड़की समझदार थी। कहा—वही तो इतना भयानक प्रमाणित हुआ। समय रहते जिनके नेत्र नहीं खुलते वे सदा ही सिर धुन कर रोते हैं। उस समय यदि गण को विश्वास हो जाता कि आभीर विदेशी है और उसका प्रभुत्व स्वीकार करना विचार-स्वातंत्र्य का विरोधी है, तो आज यह परिस्थिति उपस्थित ही क्यों होती ?

कुमार शोणकेतु ने हँस कर कहा—किन्तु आप यह क्यों भूल जाते हैं कि प्रजा भीरु है। यह धान के खेत की भाँति आक्रमणकारियों के तूफान के सामने सिर झुकाती ही चली आई है।

सनगा ने सिर उठाकर कहा—और तूफान के निकल जाने पर अपना सिर उठाती भी आई है।

उसकी पतली तीखी स्वर लहरी शोणकेतु के कानों में बज उठी। उसने तिनक कर कहा—उसको विजय में हर्ष नहीं, और पराजय में अपमान नहीं। वह कायर है।

'वह कायर है,' सनगा ने हँसकर कहा, 'जो प्रत्येक आपत्ति से युद्ध करती हुई उन्हें झेलती है, और वे शूरवीर हैं जो प्रासादों के छिन जाने पर जंगलों में मुँह छिपाये फिरते हैं !'

शोणकेतु को विद्युत छू गई। उसकी भृकुटि खिंच गई। और सनगा ठठाकर हँसी। उस हास्य की मुक्त स्वच्छंदता से शोणकेतु का मुख काला पड़ गया। उसके नेत्रों में अङ्गार से दिखाई देने लगे। पट्टमहिषी स्त्री थीं और उन्हें इस द्वन्द्व को देखने में अपार कौतूहल हुआ। उन्होंने न देखने का बहाना किया, किंतु आँखों की कोरों से देखती रहीं। वृषकेतु के ऊप के दाँत थोड़े से झलके। वृद्ध प्राड्विवाक का मस्तक झुर्रियों से भर गया। वह थोड़ा सा जैसे चिंतित हो गया था। शोणकेतु ने कठोर स्वर से कहा—अनबूझ लड़की। तू जानती है कि तू किससे बातें कर रही है ? खेद है कि तू वायु के समान है। तू मेरी हानि कर सकती है, परन्तु मैं तुझ पर अपना खड्ग नहीं उठा सकता क्योंकि तू स्त्री है। क्योंकि तुझसे पराजित

होकर मेरा अपमान तो है, किन्तु तुझ पर विजय प्राप्त करने में मेरा कोई गौरव नहीं।

सनगा हँसी ! ऐसे जैसे उस पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा था। जैसे स्त्री होने के कारण वह अपने भीतर किसी भी प्रकार का अभाव नहीं अनुभव करती। उसने जैसे अपने उद्वेग को रोक कर कहा—निस्संदेह परम वीर हो कुमार ! राजधानी में जाकर यदि इतना गरजते तो आभीर कभी के भाग चुके होते। सिंह तब ही अच्छा लगता है जब वह माँद के बाहर निकल कर गर्जन करता है।

कुमार वृषकेतु ने उल्लसित होकर कहा—साधु ! सनगा ! साधु !!

शोणकेतु फूत्कार करता हुआ सा उठ कर चला गया। सबने एक दूसरे की ओर देखा। वृद्ध प्रावृट के होंठों पर मुस्कराहट आई और उसकी दाढ़ी में छिप गई। एक बार प्रावृट और महिषी के नेत्र मिले। किंतु जब सनगा ने महिषी की ओर देखा तो वह और बात थी। सनगा का तारुण्य, उसका रूप, महिषी की आँखें तोल रही थीं। वे सम्भवतः देख रही थीं कि स्त्री अनुरूप गुण युक्ता है या नहीं। वह जानती थीं कि शोणकेतु कठोर है। किंतु इस स्त्री में उसका सामना करने की शक्ति है या नहीं ? उन्हें यह देखकर मन ही मन हर्ष हुआ कि स्नेह के नाम पर शोणकेतु उनसे जो सुविधाएँ प्राप्त करता रहा है, हठ करके भी अपने सुखों और इच्छाओं की पूर्ति करवाता रहा है, उसे यह स्त्री स्वीकार नहीं कर सकी है। और तब अनुभव की आँख ने स्त्री के यौवन को परखा। प्रत्येक वयस्क स्त्री जो तरुणी से ईर्ष्या करती है, या डरती है, इसका कारण यही है कि वह तरुणी को अपने से अधिक सशक्त समझती है। सशक्त अपने आप में नहीं, अपने प्रभाव से पुरुष को पराजित करने की सामर्थ्य होने के कारण भी। और वयस्का क्योंकि किसी समय यौवन रूपी खड्ग की धार पर नृत्य करके संसार को चकित कर चुकी होती है,

इसलिये उसे उस शक्ति का बहुत बड़ा ज्ञान होता है, जिसे पुरुष नहीं जान पाता।

सनगा सोच में पड़ गई थी। नई आई है। क्या कह गई वह ? क्या जाने अब यह लोग निकाल देंगे। पर यह विचार चला गया। स्वयं ही जो निर्वासित हैं वे क्या निकालेंगे। परन्तु इस समय उसे दास वशातल प्रकालन की याद हो आई। वह होता तो सम्भवतः उसे अपने साथ लेकर चल देता। वह क्या दास था ? उसकी वज्रदेह यष्टि और संस्कृति का ज्ञान ! कैसा कुशल धनुर्द्धर था वह ? उसने वह सब अपने यौवन में मद्र में सीखा था। मद्र में दास नहीं थे। दुर्भाग्य ने उसे फिर यहीं फँसा दिया और वह सनगा को छोटी बहिन की भाँति प्यार करता था। परन्तु वह तो यहाँ है नहीं ? फिर ? पितृव्य तो हैं। उसे कुछ संबल मिला।

पट्टमहिषी ने पुकारा—शोण !

कोई उत्तर नहीं आया। शोण अब एक वृक्ष के नीचे खड़ा सोच रहा था। क्रोध की ऊपर की लहर वह गई थी। किन्तु लहर का अंतर्मन तो अभी तक विक्षुब्ध था। उसके मन में आया कि लौट चले किंतु पाँव नहीं उठे। आत्मश्लाघा के हठ ने रोक लिया।

वृद्ध प्रावृट ने कहा—सनगा ! तू बहुत बक-बक करती है। ऊमस के भभकते मेघ को आग लगाने से वर्षा नहीं होती, उस समय उसे शीतल वायु चाहिये।

वृद्ध ने उसे डाँटा था, या उपदेश दिया था यह सनगा स्वयं नहीं समझी, वह चुपचाप देखती रही। महिषी ने फिर पुकारा—शोण !

शोण का मन किया बोल उठे, किंतु वह बोला नहीं। अब उसका क्रोध कम हो गया था—यह सोचकर कि वह भोजन के बीच से उठ कर आ गया है और माता का हृदय इससे न केवल दुखी होता है, वरन् एक भय की आशंका से ग्रस्त हो जाता है। यह उसके हृदय को कलोटने

लगा। किंतु ममता का वेग भी अहं के जाल को इतनी सरलता से न तोड़ सकता। मनुष्य वैसे उन्हीं पर रूठता भी है, जिनके प्रति वह समझता है कि यह मेरा क्रोध सह लेंगे, सह लेंगे क्योंकि स्नेह लचकीला होता है, वह दूर जितना ही खिंचे, उतना ही वेग से पास न आये, यह तो प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।

महिषी उस नीरवता को तोड़ कर बोली—सनगा ! जा उसे बुला कर ला। वह भूखा रह जायेगा। वह बाल्यावस्था से हठी है। अपने आप आना तो उसने सीखा ही नहीं !

सनगा का रक्त उसके सिर में आकर इकट्ठा हो गया, किंतु पट्टमहिषी घूर रही थीं। उसने कहा—नहीं अम्ब ! आ जायँगे।

कहने को तो कह गई किंतु मन भीतर ही भीतर काँप उठा। कुमार शोणकेतु की आँखों में निस्संदेह कठोरता थी। वह क्रुद्ध होकर गया है। कहीं और क्रुद्ध हो गया तो ! यदि वह नहीं आया तो ? किंतु अब क्या किया जाये ? उठी ! उठते में थोड़ा समय निकालने का यत्न किया और जब उठ ही गई तो वह साहस एकत्र करके बढ़ी। जैसे-जैसे उसके निकट पहुँची उसका साहस फिर कण्ठ में अटकने लगा। शोणकेतु के सामने जाकर खड़ी हो गई। उस समय चंद्रमा के धुंधले प्रकाश में कुमार ने उसके लावण्यमय मुख पर वह सहज स्नेह देखा जो उस जैसे रूप की धरोहर होती है। वह शोण को अच्छा लगा। श्रमणों के कठोर ब्रह्मचर्य से प्रभावित होकर वह भी अब तक नितांत ब्रह्मचारी ही बना रहा था। स्त्री को उसने अपने ही भय के कारण एक रहस्य का जाल समझ रखा था। दूर-दूर रहने वाले व्यक्ति के पास तनिक भी सामीप्य बड़ा प्रभावकारी प्रमाणित हुआ। वह उसे घूरता रहा और सनगा उसे देख-देख कर मुस्कराती रही। शोण को लगा कहीं यह मेरा उपहास तो नहीं कर रही है ? किंतु फिर मन को वह मुस्कान इतनी अच्छी लगी कि उसने उस स्वाभाविक मुस्कराहट में व्यंग्य ही नहीं ढूँढ़ा।

कुछ समय मौन ही बीत गया। अंत में सनगा ने ही कहा—आर्य !

'क्या है ?' शोण ने पूछा। वह समझ नहीं पा रहा था कि आखिर उससे कहे क्या।

'आप क्रुद्ध होकर आ गये हैं ?'

शोण चुप रहा। सनगा ने फिर कहा—इससे प्रगट हुआ कि आप पराजित होकर आये हैं।

शोण ने व्यंग्य से कहा—स्त्री ! स्त्री एक बरसाती नदी है और पुरुष एक पर्वत है, वह अंततोगत्वा उसके चरणों पर गिरती है।

'वह ठीक है,' सनगा ने उत्तर दिया, 'जिस श्रमण से भी आपने सीखा है, वह जीवन को छोड़ कर भाग गया होगा।'

'तुम्हें मेरे श्रमण साहचर्य्य की बात कैसे ज्ञात हुई ?' शोण ने पूछा। वह यह नहीं सोच पाया कि वह क्या कह गई।

सनगा ने कहा—पितृव्य ने कहा था न ? जब आप मुझे वन में छोड़ आये थे ?

'छोड़ आया था ? तुम तो ऐसे कहती हो जैसे तुम्हारा मुझ पर कोई अधिकार ही था जो मैं तुम्हें ले आता ? मैंने पुराणकार ब्राह्मणों को रघु-कुल के राम की कथा सुनाते हुए सुना है और उसमें सीता को लक्ष्मण वन में छोड़ आते हैं।'

'उस कथा को मैं जानती हूँ। आचार्य श्रुतश्रवा पुराणकार मेरे गुरु हैं। किंतु एक बात मैं कह दूँ। आर्य ! 'पर्वत कभी अपने पाँव की उस शृङ्खला को तोड़ नहीं सकता। चलिये मैं आपको मनाने आई हूँ।'

'क्यों ?' शोण ने कहा, 'तुम क्या मुझे निर्बल समझती हो ?' कह कर वह दो पग पीछे हट गया।

'मुझे समझने की आवश्यकता ही क्या है आर्य ! आप तो स्वयं ही पीछे हट रहे हैं। मैं आपको अभी तक अबोध ही समझती हूँ।'

शोण ने आगे बढ़ कर क्रोध से उसका हाथ पकड़ कर दबाकर कहा—अबोध ! जानती हो मुझमें कितनी शक्ति है ?

सनगा क्षण भर पीड़ा से विचलित हो गई। पर, उसके आत्मसम्मान का प्रश्न था। वह अचानक हँस दी और उसने कहा—मेरा यह हाथ उच्छिष्ठ है।

शोण को झटका सा लगा। उसने हाथ छोड़ दिया।

वृद्ध प्रावृट ने पुकारा—सनगा !

'आई', सनगा ने कहा, 'कुमार आ रहे हैं।'

शोण ने कहा—तुमने यह क्यों कहा कि मैं आ रहा हूँ।

'यदि आप नहीं चलते तो कहे देती हूँ कि आ रहे थे किंतु आपका शब्द सुन कर फिर न आने का विचार कर लिया है।' फिर मुस्करा कर कहा—एक बात पूछूँ ?

'नहीं।'

'ऐं ?' सनगा ने कहा। 'अच्छा पूछती नहीं, कहती हूँ कि सारा वस्त्र तो सुलझ गया फिर अब कण्टकों की याद करके ही रुका रहना आवश्यक है ?'

सनगा ने शोण का हाथ पकड़ लिया। ब्रह्मचारी की धमनियों में बिजली सी कौंध गई। वह रुका रहा। सनगा ने खींचा। उसकी आँखों के क्रोध के स्थान पर मुस्कराहट छा गई। वह उसके पीछे चल पड़ा। सनगा ने ज्योंही सबको देखा हाथ छोड़ दिया। शोण सबके सामने निरीह सा दिखाई दिया।

पट्टमहिषी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। कहा—शोण !

'अम्ब !' शोण ने कहा।

पट्टमहिषी ने आश्चर्य को दबाकर ममता से कहा—इसी भाँति भोजन

छोड़ कर उठते-उठते यह अवस्था आ पहुँची। अब भी तेरा दुरअभिमान दूर नहीं हुआ?'

सनगा ने बैठकर कहा—बैठ जाओ।

वह ऐसा अधिकार भरा स्वर था कि शोण झेंप गया परन्तु अब ऐंठ कर लौट जाने का अवसर न था। वह प्रयत्न करके भी अपने को क्रुद्ध नहीं कर सका। उसे इसी पर आश्चर्य हो रहा था कि वह क्यों चला आया? क्या सोच रही होगी अम्ब? क्या सोचते होंगे अग्रज और महामात्य? क्या वे यही नहीं सोचते होंगे कि शोण इस तरुणी के रूप और यौवन से प्रभावित हो गया है? क्या वह सचमुच उससे आकर्षित हो गया है? झूठ बात है उसने कभी मन को तो आज तक हाथ से जाने नहीं दिया।. श्रमण कहते हैं कि स्त्री पुरुष को रोकती है, वह उसके पाँवों में जंजाल है। श्रमण कभी स्त्री की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते। क्यों? क्योंकि वे जीवन में किसी के प्रति मोह नहीं रखते।

वृद्ध प्रावृट ने कहा—अल्प वय में इतना क्रोध शोभा नहीं देता कुमार। बालकों के अपराध .उनके अभिभावकों की शिक्षा को प्रगट करते हैं। किंतु आश्चर्य है, आज तुम लौट कैसे आये?

कुमार ने सिर झुका लिया।

'तूने कुछ कहा था सनगा?' वृद्ध ने पूछा।

'नहीं,' सनगा ने कहा। 'स्वयं ही इधर मुँह करके खड़े थे। डूबते को तिनके का सहारा। मुझे देखकर इधर चलने लगे। मैंने कहा—कहाँ जा रहे हैं? बोले—तुम मुझे बुलाने आई हो न? मैंने कहा—नहीं तो। बोले—तुम झूठ कहती हो।'

सब ठठा कर हँसे।

वृद्ध ने कहा—बड़ी बात करती है तू?

'सच पितृव्य! आप समझते होंगे, यह मेरे बुलाने पर आये हैं, मेरे कहने से आये हैं, नहीं, वे तो आप ही लौट रहे थे......'

दूसरी बार सबने अट्टहास किया। वृद्ध सुमल्लिक चौंका। और दासी पैङ्ख्या ने भी चौंक कर सुना। स्यात् कोई उपहास की बात हो गई होगी।

पट्टमहिषी ने कहा—शोण ! पहले तू खा तो ले ?

शोण खाने बैठा। कुमार वृषकेतु ने उठ कर चर्मपात्र से पानी पिया और कहा—शोण ! तू लेगा ?

'दे दे,' महिषी ने कहा, 'तू रख दे।'

'अम्ब !' सनगा ने कहा, 'मुझे जल दो।'

वृद्ध प्रावृट ने उठ कर हाथ धोते हुए कहा—सनगा तू कुएँ पर क्यों नहीं चली जाती ?/

सनगा ने समझा। वह चाहते हैं कि वह स्वयं अपना पानी ले आये। उसे याद आया, वे सब कुलीन राजवंशीय लोग हैं।

वह चलने लगी। पट्टमहिषी ने पुकारा—क्यों ? सनगा, ले पीले।

'नहीं ? अम्ब। मैं वहीं पी आती हूँ।'

'यहाँ आ मैं तुझे बुलाती हूँ', महिषी ने अधिकार के स्वर में कहा। उसे सुन वह पास आई। महिषी ने चर्मपात्र बढ़ा दिया। सनगा ओक से पीने लगी। आधा पिया, आधा फैल गया। खाली पात्र उसने शोण के पास रखा। फिर कहा—अम्ब, यह तो खाली हो गया।

'कोई बात नहीं, ओघवती !'

'देवी !' ओघवती ने कहा, 'लाती हूँ।'

वृद्ध ने बढ़ कर कहा—कुमार वृषकेतु ! स्मरण है न ?

'हाँ पितृव्य ! अभी रात एक पहर भी नहीं गई। मुझे स्मरण है।'

वे दोनों चले गये। महिषी और सनगा बैठी रहीं। शोण खाकर उठ गया।

× × ×

धीरे धीरे चन्द्रमा निकल आया। सनगा शैय्या पर लेटी थी। लेटते

ही अंग-अंग मे पीड़ा होने लगी। बहुत ही थकी हुई थी। कुछ ही देर में गहरी नींद ने घेर लिया।

अचानक अर्द्धरात्रि को सिर पर झूमते वृक्ष पर कोई पक्षी बोल उठा। सनगा की आँख खुल गई। उस समय वह ऐसी जागी जैसे कभी सोई ही नहीं थी। उसने रात में चारों ओर आँख फाड़ कर देखा। सब निस्तब्ध था। शांत। केवल कुमार शोणकेतु एक वृक्ष पर बैठा था। उसका सिर उनींदी पलकों के भार को जैसे न सहकर 'भल्ल पर टिक गया था। तो वह पहरा दे रहा है? संभवतः दो-एक दास भी इधर-उधर घूम रहे हैं। वह शैय्या पर पड़ी-पड़ी उस प्रहरी को देखती रही। नींद बार-बार पदाघात करती थी और शोण जाग उठता था। सनगा की पलकों पर से नींद चली गई और पलकों को हल्केपन ने ढाँक लिया। वह सोने का प्रयत्न करके भी सो नहीं पाई। और कुछ देर बाद जब मन उचट गया तो एक-एक करके अतीत की बातें याद आने लगी। वशातल प्रकालन जब शूर्पारक से लौटकर अविदग्ध ग्राम में जायेगा तब क्या होगा! वह वाग्मी मौसी के बारे में क्या आभीरों से पूछेगा?

कब न जाने वह धीरे-धीरे गीत की कुछ कड़ियाँ गुनगुनाने लगी, यह उसे ध्यान नहीं रहा। उसका गीत सुनकर कुमार वृषकेतु की नींद टूट गई। परन्तु वह उठा नहीं। आँखें बंद किये ही सुनता रहा। उसे आधी नींद में वह मीठा संगीत ऐसा लगा जैसे स्वप्न लोक में ही वह कोई तान सुन रहा है। किंतु कुमार शोण भल्ल लेकर सन्नद्ध हो गया। वह गीत को सुनकर चौंक गया। उसने कान लगाया और धीरे से उधर ही बढ़ा जिधर से संगीत ध्वनि आ रही थी। सनगा ने उसे आते देखा तो चुप हो गई।

'कौन गा रहा था?' शोण ने कहा।

सनगा सोई सी पड़ी रही। शोण क्षण भर देखता रहा और उसके

मुख से फूटा—सब सो रहे हैं तो गाना सूझा है, जैसे किसी की नींद नींद ही नहीं।'

सनगा ने सुना। परन्तु साहस नहीं हुआ कि कुछ कहे। रात अब महक रही थी। उसने चुपचाप आँख खोल कर देखा। देखा शोण गया नहीं था। वह एकटक देख रहा था। और देखते हुए उसकी पलकें झुक गई थी। सनगा का मुख लाज से लाल हो गया। किंतु चाँदनी के अभाव में उसको शोण न देख सका। वह अभी तक एकटक देख रहा था। सनगा अपनी एक आँख खोल कर उसे देखती रही।

इसी समय वृद्ध प्रावृट का स्वर सुनाई दिया—शोणकेतु। कुमार!

शोण आतुरता से सनगा की शैय्या से हट कर वृक्षों की आड़ में हो गया और उसने भर्राये स्वर से कहा—क्या है पितृव्य?

वृद्ध ने पुकारा—कहाँ हो?

'यह जो हूँ,' शोण ने कहा। 'क्या हुआ?'

वृद्ध ने फिर कहा—वह देखो! फूस के पास आग पड़ी है। उसे पकड़ती जा रही है। उसे बुझा दो। अन्यथा सबके जागने तक तो वह सब कुछ भस्म कर देगी।

शोण ने देखा वृद्ध का कथन सत्य था। सनगा की शैय्या से बाँई ओर आग सी जल रही थी। वह उसके पास गया। बुझाने का यत्न किया! पाँवों के जूतों का आघात किया किंतु लपट इतनी छोटी नहीं थी।

शोण ने पुकारा—वह तो जल रही है पितृव्य! उसे कैसे बुझाऊँ। उसे बुझाने में तो मैं जल जाऊँगा।

पट्टमहिषी जाग गई थीं। उन्होंने देखा और कहा—जो जल रहा है उसे भल्ल से बाहर खींचकर अलग कर दे। जो जल गया सो जल गया। आगे नहीं जलेगा।

शोण ने चेष्टा की। फिर कहा—नहीं बुझेगी। मेरे बस के बाहर है।

सनगा उठी। दौड़ कर गई। कुएँ से पात्र में पानी भर कर ले आई उस अग्नि पर डालने लगी। पात्र समाप्त हो गया, परन्तु अग्नि नहीं बुझी। पट्टमहिषी ने पुकारा—वहाँ कौन है ?

'मैं हूँ सनगा।'

'तू क्या कर रही है ?'

'अग्नि बुझा रही हूँ। नहीं बुझती।'

'तुम दोनों से नहीं बुझी ?' महिषी ने पुकारा।

'नहीं', दोनों ने कहा।

सनगा खड़ी रही। दास दौड़े। कुछ ही देर में उन सबने मिलकर ज्वाला बुझा दी। फिर वे सब चले गये। सनगा भी लौट कर शैय्या पर लेट गई। शोणकेतु प्रहरी बन कर खड़ा रहा।

कुछ देर में फिर नीरवता छा गई। सनगा को लगा उसकी शैय्या के पास कोई खड़ा है।

'कौन है ?' पूछा।

'मैं हूँ', शोण ने कहा, 'प्रहरी हूँ। घूमते हुए, इधर आ गया हूँ।'

सनगा चुप रही।

'तुम सो नहीं रही हो ?'

'सो ही तो रही हूँ।'

'तुम सोते में बात कर लेती हो ?'

सनगा हँस दी। कुमार शोणकेतु के पग चाप दूर हो गये। सनगा शैय्या पर फैल कर लेट गई। कुछ देर बाद उसे नींद आ गई।

रात का अँधेरा फिर गहरा हो गया था। केवल सनसनाती वायु दूर के काले पर्वत तक चली जाती थी। विंध्य की फैली हुई श्रेणियाँ आकाश के नील के नीचे सुनसान पड़ी थीं, नीरव। आकाश में अब कहीं-कहीं नक्षत्र दिखाई दे रहे थे। केवल शोण जाग रहा था।

× · × ×

नीरवता में शब्द सुन कर सनगा जाग गई। वह चौंककर शैय्या पर उठ कर बैठ गई। उसने देखा वृद्ध प्रावृट अपने खल्लकबद्ध को पाँवों में बाँध रहा था। और वृषकेतु अश्व लिये खड़ा था। यह अश्व काला था और बलिष्ट लगता था। इस पर चर्म का आस्तरण था। वृषकेतु दोनों ओर खड्ग कायबन्ध में लटकाये खड़ा था। शुक्रोदय नहीं हुआ था। शोणकेतु दूर एक टीले पर खड़ा था। उसकी आकृति अंधकार में आकाश के नील पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

वृद्ध प्रावृट ने कहा—चलो कुमार! रात में ही महानगर में पहुँच जाना चाहिये।

'परिखा पार करनी होगी। प्राकार द्वार बन्द होंगे,' वृषकेतु ने कहा।

'नहीं,' वृद्ध ने कहा, 'कोट्टपाल ब्राह्मण मारुतन्तव्य है और वह अपनी ओर है। उसके द्वारा नगर प्रवेश कठिन नहीं।'

'अभी तो बहुत रात है,' वृषकेतु ने आकाश की ओर देखते हुए कहा।

वृद्ध हँसा। उसका भर्राया और भारी स्वर वन प्रांत में गूँज उठा। उसने कहा—विलंब से जिनका जागरण होता है, वे सूर्योदय के गौरव को कभी नहीं जान पाते कुमार। फिर उसने कहा—तुम यह अश्व क्यों लिये हो?

'आप चलेंगे न?' वृषकेतु ने कहा।

वृद्ध फिर हँसा। कहा—जिस समय मैं अश्व पर आरूढ़ होकर चलूँगा मेरी बात कोई नहीं सुनेगा। सौवीरों का दम्भ तो नष्ट हो गया वृषकेतु। तुम्हारे पितृव्य को अब प्रजा महामात्य के नाम से नहीं सुनती। वे तो वृद्ध प्रावृट की बात सुनते हैं। मयूर वंश कहता था कि प्रावृट तेरी

सुनते हैं परन्तु पूर्ण विश्वास नहीं होता। तू तो पहले भी जाने क्या-क्या कहा करता था ?

'देव ! जिस समय आपने पूज्य पिता के स्वर्गवास के अनन्तर अमात्यों का मंडल बिठाया था, मैंने तो उत्तराधिकारी होने पर भी राज्य लेने की चेष्टा नहीं की। राज्य में कुलों का वैमनस्य घटाने को मैंने तो कुलों का गण बनाना स्वीकृत कर लिया था। जानता था कि यदि यह नहीं होगा तो समस्त सौवीर सत्ता ही समाप्त हो जायेगी। किन्तु दासों ने सिर उठाने का यत्न किया ?'

वृषकेतु की बात समाप्त हुई प्रश्न के रूप में। वृद्ध प्रावृट ने कहा—परन्तु कुल गण का परिणाम क्या हुआ ? कुल श्रमणों के चक्कर में क्षत्रिय होने के नाते ब्राह्मण विरोध में लगे। श्रेष्ठियों ने श्रमणों को धन दिया। एक बार पहले समस्त उत्तराखंड में व्यापक गणतंत्र बनाने का प्रयत्न हो चुका है, ताकि दास दबे रहें, किन्तु अब यह शासन एक कुल के हाथ की बात नहीं रही है, परन्तु हुआ क्या ? दास शक्ति बढ़ रही है वृषकेतु। अनार्यों ने जो वर्णों में परिवर्त्तन किया है, उससे दास भी सिर उठा रहे हैं। कुल के नागों में कोई वंश अपने को ब्राह्मण कहता है, कोई क्षत्रिय। शूद्र और दास क्यों दबेंगे ? व्यापार के बल पर श्रेष्ठि धन एकत्र कर रहे हैं। वे तो कुल गणों में क्षत्रियों की शक्ति नहीं चाहते ? मैंने कहा था कि दासों पर यह भीषण अत्याचार नहीं होने चाहिये। जानते ही हो न ? परिणाम क्या हुआ। दासों और संपत्ति के मोह ने भूस्वामियों को विश्वासघाती बना दिया। वे आभीरों को ले आये। उनका विचार है कि अब वे अमर हो गये हैं।

वृषकेतु सोचता रहा। वृद्ध ने फिर कहा—यही कलि है वृषकेतु। जिस दिन कौरवों और पाण्डवों में युद्ध हुआ था उसी दिन आर्य शक्ति क्षीण होने लगी थी। यादवों के गृह युद्ध ने सर्वनाश कर दिया। तब से

अब तक ब्राह्मण अधोगति की ओर गिरता जा रहा है। कौन जाने विश्वदेवों को यही स्वीकृत था?

वृषकेतु ने कहा—आर्य! इस समय ब्राह्मण और क्षत्रिय का प्रश्न उठाने पर तो सचमुच कुछ नहीं होगा।

'होगा', अमात्य ने कहा, 'जब तक वे दोनों एक न होंगे तब तक वैश्यों और शूद्रों का भय निरंतर बना रहेगा।'

वह उठ खड़ा हुआ। कहा—कुमार! अश्व बाँध दो। जब मेघ टकराते हैं तब उल्काओं का विश्वास नहीं किया जाता, विद्युत् प्रकाश की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

'चलिये,' कुमार वृषकेतु ने कहा, 'गंधकाल को भी ज्ञात होगा कि कौन क्या कर रहा है? आर्य! उसके दास सब उसकी ओर हैं?'

'नहीं कुमार! आभीरराज नये-नये कार्य कर रहा है, वह तो तुम सुमल्लिक से सुन चुके हो?'

'सुन तो चुका आर्य।'

'तो क्या तुम समझते हो यही काफी है?'

'देव! प्रजा को आभीर मिला रहे हैं।'

वृद्ध मौन हो गया। फिर कहा—किन्तु वे विदेशी हैं कुमार। यह लाभ ऊपरी हैं। वे अंततोगत्वा हत्यारे और लुटेरे हैं। जानते हो न उन्होंने सौवीरों की स्त्रियों का कितना अपमान किया है। प्रजा में उसका विक्षोभ नहीं है?

'होगा आर्य।'

'और आभीरराज सौवीर भूस्वामियों के स्थान पर आभीर भूस्वामी रख रहा है। दासों की संपत्ति के अधिकार रहने पर भी अंततोगत्वा आभीर भूस्वामी ही दासों की समस्त संपत्ति का स्वामी होगा।'

'आर्य! शुभ संवाद है। दास दास हैं।'

'नहीं कुमार ! प्रजा में चलने के पहले अपने को खोज लो। कुल गण अन्याय के लिये नहीं होगा।'

'तो क्या वह ब्राह्मण शासन के लिये होगा आर्य ?'

'नहीं,' वृद्ध ने कहा, 'परन्तु वह वणिकों का भी नहीं होगा।'

× × ×

भूस्वामी ह्रीमान् कुण्ड वंशीय क्षत्रिय था। वह लगभग पैंतीस वर्षीय व्यक्ति था। उसका मुख कुछ लम्बा और नुकीली नाक थी। उसके केश नीले थे और आँखें कत्थई। वह बहुमूल्य कौषेय पहने था और हिरण्य उसके वस्त्रों पर चमक रहा था। उसकी ग्रीवा मोटी थी जिसके कारण वह बलिष्ठ दिखाई देता। आँखें देखते ही वह अत्यन्त क्रूर दिखाई देता। उसे आखेट करना अत्यन्त प्रिय था। विभिन्न जनपदों की सुन्दरियों को बलपूर्वक भोगने का व्यसन उसे बीस वर्ष की आयु से ही लग गया था। अपनी भूमि के शूद्रों पर उसने आज्ञा प्रचारित कर दी थी कि जिस समय कोई लड़की युवावस्था को प्राप्त करे तो पहले उसके ग्राम भवन पर उपस्थित हो। वह दास बेचने वालों का प्रिय धनी था। वे उसके पास सुमेरु से लेकर चोल देश तथा अरब से लेकर ताम्रलिप्ति तक की दासियों को लाते, जिन्हें वह तारुण्य के प्रारम्भ में भोग कर उनकी संतान को अलग बेच कर उन्हें भी बेच देता और वह इस प्रकार मत्त रहता। उसके अन्तःपुर में कई स्त्रियाँ रहती थीं जिन्हें वह काम पिपासा में पड़ा हुआ छोड़ देता। वह गन्धकाल का परामर्श लेने आया था क्योंकि बाभ्रवायणि की संपत्ति अब उसी की हो गई थी। वह बाभ्रवायणि का भाञ्जा था और मामा का कोई और उत्तराधिकारी नहीं था। उधर आभीरराज अपने बाँये हाथ कण्डरीक को उस संपत्ति का स्वामी बनाना चाहता था क्योंकि कण्डरीक न केवल एक अच्छा सेनापति था, वरन् वह उसकी आभीर महिषी सौरभेयी की अनुजा अश्वावहा का पति भी था।

विवाह के पहले .अजावहा ने आभीरराज भुमन्यु से एक पुत्र भी प्राप्त किया था जो मर गया।

गंधकाल ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहा—स्वागत आर्य।

आर्य गन्धकाल शैय्या पर लेटा था। इस समय बैठ गया। हिरण्य का काम हुआ आस्तरण इस समय धरती पर बिछी पटलिका पर गिर गया था। दूसरी शैय्या पर चित्तक शोभित था। वे बड़े पलंग बहुमूल्य दिखाई देते थे। प्रकोष्ठ में काष्ठस्तंभों पर मणिमालाएँ लटक रही थीं। बीच में अगरुपात्र रखा था। भित्तियों पर चित्र बने थे और एक स्वच्छ चंदन की फलका पर ऊदबिलाव की खाल के उद्दलोमी कम्बल के नीचे कदलीमृग के चमड़ों से बना कम्बल कदलीमिगपवरपच्चत्थरण पड़ा था। सामने की तिपाई पर गोणक बिछा था। दासी खड़ी चमर हिला रही थी।

आर्य ह्रीमान् ने प्रवेश किया। पादुका पहन कर गंधकाल खड़ा हुआ। आर्य ह्रीमान् के बैठते ही दो दास आये, एक ने उनका उपानह उतारा, दूसरे ने चरण धोकर एक पात्र में जल एकत्र किया और वे दोनों चले गये। आर्य गंधकाल ने कहा—आर्य! नागवल्ली!

ताम्बूल मुख में रख कर ह्रीमान् ने इधर-उधर देखा। गंधकाल समझ गया। कहा—आर्य! मँगाऊँ?

और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसने दासी की ओर देखा। दासी गई और हाथ में मदिरापात्र और चषक लेती आई।

'आर्य आप?' ह्रीमान् ने पूछा।

'श्रीमान् मैं कुछ व्रत से हूँ। श्रमण वाटधान ने मुझे मदिरा न पीने का आदेश दिया है।'

श्रमण वाटधान एक जिन मुनि था। वह विचित्र व्यक्ति था। उसकी सेवा में अनेक लोग आते थे और उन्हीं में एक गन्धकाल भी था। भूस्वामी ह्रीमान् मुस्कराया। उसने ढाली और पी और फिर कहा—आर्य! नई व्यवस्था कैसी भी हो क्या उससे हमें हानि होने की आशंका है?

'आर्य ! स्पष्ट करें, ' गन्धकाल ने कहा।

जब आर्य ह्लीमान् ६-७ चषक पी चुका तो उसने कहा—आर्य तो जानते ही हैं मैं आर्य बाभ्रवायणि की संपत्ति का उत्तराधिकारी हूँ।

गन्धकाल ने कहा—हाँ आर्य ! सत्य है।

'मैं उनका भागिनेय हूँ।'

'सत्य है आर्य।'

'उन्होंने पहले आवशीर देश से आये वसिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण प्रद्वेष का गोत्र स्वीकार कर लिया था। परन्तु जीवन के उत्तरांश में वे ब्राह्मणों के कोई कर्मकाण्ड नहीं मानते थे। वे उलूकपक्खधारी श्रमण केयूर के अनुयायी हो गये थे।'

'मुझे अवगत है आर्य, ' गन्धकाल ने कहा।

'तो फिर मुझे उत्तराधिकार प्राप्त होना चाहिये आर्य ?' आर्य ह्लीमान् ने कहा।

'अवश्य, ' गंधकाल ने कहा, 'मैंने आभीरराज भुमन्यु से कहा था !'

'कहा था देव ! तो उन्होंने क्या कहा।'

'कहा विचारेंगे।'

'इसमें विचार करने का अवकाश ही कहाँ है आर्य ?'

'यही मैं भी सोचता था। तब मैंने आभीर महिषी सौरभेयी से पूछा।'

'उन्होंने क्या कहा ?'

'आर्य उस बात को जाने दें। उसमें प्रिय कुछ नहीं है।'

आर्य ह्लीमान् की जिज्ञासा मदिरा की तीव्र वासना में और भी तीक्ष्ण हो गई थी। कहा—क्यों आर्य ? क्या मैंने सौवीर राजकुल का अन्न ग्रहण करके भी आभीरराज की सहायता नहीं की ?

'मेरे अतिरिक्त इसे उतना और कौन जान सकता है आर्य ! मुझे भी क्या स्मरण दिलाने की आवश्यकता है ?'

'तो फिर ?' ह्लीमान् के स्वर में आतुरता थी।

'देव ! विजयी विजयी है। इसे समझना आवश्यक है।'

'आर्य गन्धकाल,' ह्लीमान् का स्वर तिक्त हुआ, 'यह भी भूलने की बात नहीं है कि आभीरराज भुमन्यु हमारे कारण विजयी हुआ है। और यही क्यों ? उनकी आभीरमहिषी सौरभेयी, दूसरी स्त्री मदनमंथिनी ने दासों और शूद्रों को सिर पर चढ़ा लिया है।'

'आर्य !' गन्धकाल ने कहा, 'वे प्रजा को अपनी ओर 'करके,. हमें सदैव के लिये समाप्त कर देना चाहते हैं।'

'यह नहीं हो सकता आर्य गन्धकाल ! हमें विद्रोह करना होगा।' ह्लीमान् ने तिपाई पर हाथ मार कर कहा।

नेपथ्य में संगीत ध्वनि होने लगी थी, जिससे ह्लीमान् पर मदिरा का प्रभाव पड़ चुका था। कोई स्त्री दाक्षिणात्य के राक्षसनृत्य की गत बजा रही थी और प्रचण्ड रव करके मृदंग कभी-कभी वज उठता था। ह्लीमान् ने गन्धकाल की ओर देखा।

'वह कुछ नहीं,' गन्धकाल ने कहा, 'मणुलुरु का कोई संगीतज्ञ देशाटन करके आया है। आर्या सुन रही हैं।'

'ओह !' आर्य ह्लीमान् ने सिर हिलाया जैसे कोई बात नहीं। फिर कहा—आर्य ! तो महिषी सौरभेयी ने क्या कहा ?

'आर्य ! उन्होंने केवल इतना कहा था कि आर्य ह्लीमान् को आभीर स्त्रियों का सम्मान करना चाहिये।'

'सम्मान !' आर्य ह्लीमान् चौंका। उसे याद आया। वह प्रथम तो सुन्दरी सौरभेयी पर ही मोहित था, और वह जानती थी, जिससे उसको एक अपरूप गर्व हुआ था, दूसरे उसने एक साधारणी आभीर स्त्री को पकड़ कर अंतःपुर में एक रात रखा भी था। संभवतः वही संवाद पहुँच गया था।

ह्रीमान् कुछ देर सोचता रहा। फिर कहा—आर्य ! सौवीर स्त्रियों का आभीर कुछ भी कर सकते हैं ?

वह स्यात् अभी कुछ और कहता किन्तु आर्य गंधकाल ने काटकर कहा—आर्य ह्रीमान् ! वे स्वामी हैं। वे शासक हैं।

ह्रीमान् के मन में आया, वह चिल्ला उठे कि यह असह्य है, यह वह नहीं सुन सकता, किन्तु हठात् उसे याद हो आया कि वह स्वयं भी तो आभीरराज का सहायक था।

'और जानते हैं आर्य ?' गंधकाल ने कहा, 'सौवीर प्रजा का असंतोष हमसे बढ़ता जा रहा है। श्रेणियों में बड़ा विक्षोभ है। करघे बुनने वाले और स्वर्णकार असंतुष्ट हैं। सारे कर्मकरों में एक उत्तेजना है। श्रेष्ठियों का व्यापार पहले से भी बढ़ गया है। सिंधु गण के कुलों ने उन पर नये कर लगा दिये हैं। कई श्रेष्ठि तो कहते हैं कि राज्य सुरक्षित नहीं है। कुलों के पारस्परिक वैमनस्य से हानि होती है।' गंधकाल ने हाथ फैला कर कहा—चारों ओर आँधी आने के पहले की सी गहरी निस्तब्धता छा रही है। उसने फिर रुक कर कहा—और ब्राह्मण प्रावृट प्रजा में विद्रोह की ज्वाला जगा रहा है।

'तो क्या आर्य समझते हैं कि अमात्य प्रावृट......'

'अमात्य कह कर,' गंधकाल ने कहा, 'आप क्या कहना चाहते हैं ?'

'देव क्षमा करें। मैं पूछता था प्रावृट का इतना अधिक प्रभाव है ?'

'बहुत है,' गंधकाल ने कहा, 'आर्य ह्रीमान् बहुत है।'

'प्रजा उसके लिये पागल हो रही है। वह दिन दूर नहीं है जब प्रजा की सहिष्णुता की पराकाष्ठा हो जायेगी और इस राज्य को भी वह पलट कर फेंक देगी। आर्य एक बात में सम्मति देंगे ?'

गंधकाल की तीक्ष्ण दृष्टि देखकर ह्रीमान् सन्नद्ध होकर बैठा। उसने जिज्ञासा से देखा। उसको मदिरा ने घेर लिया था ही, अब गंधकाल

जैसे व्यक्ति की सम्मति लेना तो एक विपत्ति आ गई। उसने कहा—कहें आर्य !

'मैं पूछता हूँ कि यदि आप महिषी को प्रसन्न कर लें तो ?'

'मैं चेष्टा करूँगा। परन्तु किस तरह ?'

'वह मैं बताऊँगा।'

ह्रीमान् ने उठकर गंधकाल के दोनों हाथ गद्गद होकर पकड़ लिये और कहा—श्रीमान् ही मेरे कृपालु मित्र हैं।

ठीक उसी समय कृपालु मित्र की दृष्टि हठात् एक।बार चमक उठी और फिर बुझ गई।

ह्रीमान् ने फिर कहा—आर्य ! प्रावृट कहाँ है ?

'चरों ने बताया कि वे यहीं महावन में हैं !'

'वे कौन ?'

'वन्हिकेतु की स्त्री और दोनों पुत्र।'

'सुवर्चला तो आभीरराज की स्त्री हो गई ?'

'वह आपका ही अनुग्रह था,' गंधकाल ने नम्रता से कहा। ह्रीमान् ने कृतज्ञता और आश्चर्य से देखा।

'एक बात सोचता हूँ,' श्रीमान् ने कहा।

'क्या आर्य ?' गंधकाल ने कहा।

'यदि महावन घेर कर प्रावृट की हत्या कर दी जाये ?' उसने सोचते हुए कहा।

'अनर्थ हो जायेगा आर्य ह्रीमान् !' गंधकाल ने झुक कर कहा, 'आप क्या कह रहे हैं। आभीरराज कौन अपना बंधु है मित्र ! यदि वही कण्टक मिट गया तो यह नीच तो हम सबको काट कर फेंक देगा और हमारी सब जगहों पर आभीर ही आभीर दिखाई देंगे, जो अब पुरुवंशी यादव हो गये हैं।'

अंतिम व्यंग्य से उसकी भृकुटी चढ़ गई और मुख पर चौड़ी मुस्कान

दिखाई दी, परन्तु वह शीघ्र ही गंभीर हो गया।' आर्य ह्रीमान् आँखें फाड़ कर देखता रहा। उसने सोच कर कहा—यह भी ठीक है आर्य।

वह उठ खड़ा हुआ। गंधकाल उसके साथ उसे पहुँचाने, बाहर, प्राङ्गण को पार करके सिंहद्वार से तनिक ही इधर तक आकर, रुक गया। उसने कहा—आर्य ह्रीमान्! आभीर महिषी महत्त्वाकांक्षिणी स्त्री है। उसमें स्त्रीमात्र के प्रति ईर्ष्या भी है। वह असीम अधिकार चाहती है। मदनमंथिनी और सुवर्चला के विवाह में उसे अपनी पराजय दिखाई देती है। वह तो संभवतः स्वयं राज्य करना चाहती है।

ह्रीमान् ने ठहाका लगाया और कहा—आर्य! यह भी आप सत्य कह कर चाहते हैं कि मैं विश्वास कर लूँ?

'नहीं करने ही से तो वस्तु का सौंदर्य नष्ट नहीं हो जाता आर्य? वह पार्वत्य प्रवेश के मण्डलेश्वर की दुहिता है। उसका पिता आभीरराज भुमन्यु से भी बड़ा राजा है। उसने मद्रों के आयुधजीवी संघों से भी कर ग्रहण किया था और माद्री ललनाओं को छीन कर ले गया था।'

'आर्य!' ह्रीमान् ने कहा, 'तो क्या यह आभीर इतने सशक्त हैं? कोई इनकी स्त्रियों को नहीं छीन सकता?'

'आप छीन सकते हैं आर्य,' गंधकाल ने कहा, 'यदि आप मेरे आदेश पर चलें।'

'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ,' आर्य ह्रीमान् ने कहा, 'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।' उसके नेत्रों में एक ज्वार सा आया।

'तो क्या', उसने कहा।

बात काट कर आर्य गंधकाल ने कहा—हाँ आर्य! सौरमेयी ही।

ह्रीमान् ने एक भीषण प्रतिहिंसा की लम्बी स्वांस ली और कहा—आर्य आप कुणिक के उत्तराधिकारी हैं।

'मैं,' गंधकाल ने कहा, 'तुम्हारा मित्र हूँ।'

× × ×

रात्रि के अन्धकार ने जहाँ मनुष्य को क्षुब्ध और छोटा बनाया है, उसमें भय उत्पन्न किया है, दिन के आलोक ने सदा ही संसार को स्पष्ट किया है। वृद्ध प्रावृट इस समय एक पथ पर एक घर के चबूतरे पर खड़ा था। उसके सामने सौवीर तरुण और तरुणियाँ खड़े थे। पीछे की ओर घर की स्वामिनी थी जो एक हाथ द्वार पर रखे चुपचाप खड़ी थी। उसकी झुर्रियाँ देखकर लगता था वह अत्यन्त वृद्धा थी। इधर-उधर कई व्यक्ति और खड़े थे। वे सभी, आयु में भेद रख कर भी, इस समय दत्त-चित्त होकर सुन रहे थे। एक स्त्री का बालक उसकी गोद में रोने लगा था। उसने उसके मुख पर हाथ रख दिया था और उसे कमर पर लगाये, चुप कराने को ऐसे हिल रही थी जैसे वह किसी झूले पर थी।

महानगर के इन पिछले भागों में प्रावृट के असंख्य अनुयायी थे, जो उस पर श्रद्धा रखते थे। यह श्रेणियों के कर्मकर थे। करघे से लेकर धौंकनी तक के काम करने वाले सब इस भीड़ में थे। उनके वस्त्रों को देख कर गौरव का अनुभव नहीं होता था। वे प्रायः नग्नकाय, नीचे अधोवासक पहनने वाले थे और स्त्रियाँ वक्ष पर पट्ट बाँध कर, नीचे अधोवासक धारण करतीं। कुमार वृषकेतु पथ के एक किनारे पर खड़ा था। इस समय वह साधारण वस्त्र पहने था, किन्तु देखकर ही वह कुलीन प्रतीत होता था।

वृद्ध का स्वर उठता रहा—सौवीरों की स्वतन्त्रता आभीरों ने कुचल दी है। क्योंकि सौवीर प्रजा आज भी अपने नेत्र मूँदे हुए है। ब्राह्मण आर्त्त हो रहे हैं। क्योंकि अधर्म बढ़ता जा रहा है। क्षत्रिय मदांध हो रहे हैं। श्रमणों की शिक्षा ने उन्हें किसी भी मर्यादा का विश्वासी नहीं रखा। राज्य विधवाओं और अनाथों की रक्षा नहीं करता। कृषकों को करों से मुक्ति नहीं। ब्रह्मदेय भूमि और अकरद भूमि आभीरों के हाथ में चली गई है। राज्य शासन के अधिकारी के पुत्रों के जन्म पर उत्संग बलात्

लिया जाता है। युद्ध और असाधारण परिस्थिति के अंतर्गत कृषि कर बढ़ गया है। पण्यों पर साधारण विक्रेता को अधिक व्यय करना होता है। कारुशिल्पियों के समस्त गण और संघ अपनी श्रेणियों का संगठन करने में राज्य की बाधा पाते हैं। अन्तपाल अलग अधिक वर्त्तनीग्रहण करते हैं। कर्मकरों पर नित्य नये बोझ चढ़ाये जा रहे हैं। द्रोणमुख और खर्वटों में कितनी .बलिग्रहण की जाती है। राज्य कृषि में भाग : से संतुष्ट नहीं, सीता* के लिए दासों को बलपूर्वक कार्यरत किया जाता है। पठ्ठन बढ़ गया है। सौवीर! तुम अपना शासक स्वयं निर्णित कर सकते हो। तुम बुरा अधिकारी चुनोगे, बुरा फल पाओगे। सेना के बल पर गण को दबाया नहीं जा सकता।

'किन्तु', उस भीड़ में से स्वर उठा, 'दासों को इस सबसे क्या हानि और क्या लाभ महामात्य? वे तो पहले भी बिकते थे, अब भी बिकते हैं। श्रमणों और ब्राह्मणों ने दासों को क्या दिया।'

वृद्ध अमात्य ने मुड़ कर देखा। वह एक दम चिल्ला उठा—वशातल प्रकालन!

'आर्य!' वशातल ने कहा। वह एक सुदृढ़ दास था। उसका रंग साँवला था। उसके गाल सुते हुए थे। वह घास का जूता पहने था। और उसके नेत्रों में एक ज्वाला सी जलती हुई दिखाई दे रही थी। वह केवल अधोवासक पहने था, जिसकी लांग पीछे खोंस रखी थी। उसकी कटि पतली थी और नाक भी पतली थी। उसके सिर के बाल कटे हुए थे और मस्तक पर लाल चीर बँधा था। कण्ठ पर उसने कौड़ियों की माला बाँध रखी थी। उसने बात रोकी नहीं, कहा—मैं वही दास हूँ वशातल प्रकालन जिसको आपकी दया के कारण जीवन प्राप्त हुआ। मैं शूर्पारक से लौट कर आया हूँ। देव! मैंने ताम्रलिप्ति से वाल्हीक के परे तक यात्रा की है, शूर्पारक भी देखा है। वणिक श्रेष्ठियों के अधिकार में मैं पहली

---

*खेती का सरकारी कर

बार यह अनुभव कर सका हूँ कि धन प्राप्त करने पर मनुष्य को मनुष्य समझा जा सकता है। श्रेष्ठि पृथग्र कहते थे ' कि जब वे दरिद्र थे तब समाज में उन्हें कोई पूछता न था। आज वे शूर्पारक के क्षत्रियों और ब्राह्मणों द्वारा सम्मानित किये जाते हैं। आर्य! मेरे स्वामी हैं, परन्तु वशातल प्रकालन मृत्यु से भयभीत नहीं है। वह पूछता है कि दासों पर जब न श्रेणियाँ दया करती हैं, न ब्राह्मण, न श्रमण, न क्षत्रिय, तो हम क्यों लड़ें ? आभीरराज ने दासों को साँस लेने का अवसर दिया है।

'किन्तु वे विदेशी हैं प्रकालन !' महामात्य ने कहा, 'जो कुछ हो गया था उससे उन्हें लगता था सब कुछ घूम रहा है। वे इस दास की हत्या करने के अधिकारी थे। किन्तु वहाँ अब दासों की भीड़ बढ़ गई थी फिर वे तो.शासक नहीं। वशातल को उन्होंने उस समय खरीदा था जब क्षत्रिय मार्तिकावतक ने कोड़ों से मार-मार कर उसे मूर्च्छित कर दिया था। आज वही यह क्या कह रहा है? क्या सब कुछ का सर्वनाश हो गया ? क्या यही कृतज्ञता है ? किन्तु दास किसका हुआ है। संयोग देख कर यह भी बराबरी करने लगा। इन्द्र ! क्या यही कलि नहीं है। और वह कह क्या रहा है ? दास स्वतन्त्र होना चाहता है.? और जो संपत्ति उस पर खर्च की गई है ? कुछ नहीं। श्रमणों के अंधाधुंध प्रचार का फल है यह। वे ब्राह्मण-विरोध में कहते हैं कि मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नहीं है। और उसी को सुन कर अब दास कहते हैं कि मनुष्य और मनुष्य समान हैं। यह असंभव है। किन्तु सोचने का अवसर नहीं मिला। वशातल ने फिर कहा—आभीर विदेशी हैं उनके लिये, जिनके अधिकार वे छीन रहे हैं। हमें उससे क्या हानि है आर्य !

इसी समय भीड़ में से कुछ लोग चिल्लाये—दास होकर ऐसी बातें कर रहा है ? मारो ! मारो ! क्या सौवीरों का रक्त ठंडा हो गया है।

महामात्य ने रोकने की बहुत चेष्टा की किन्तु वे कुछ नहीं कर सके। भीड़ ने वशातल प्रकालन को इतना मारा कि वह रक्त उगलने लगा।

तब उन्होंने कहा—श्रमण ब्राह्मण का प्रश्न नहीं। त्रिवर्ण एक है। वह न दासों को सिर उठाने देगा, न आभीरों को सहेगा। महामात्य की जय!

किन्तु महामात्य भीड़ फाड़ कर आगे आया। उसने देखा वशातल प्रकालन का शरीर धरती पर पड़ा था। उस समय उसका हृदय तड़फड़ा उठा। यह क्या हुआ?

किसी ने पुकारा—महामात्य कहाँ है?

'यह रहे, यह रहे,' एक स्त्री चिल्लाई, 'आर्य! आपने तो पहले भी गण बनाने की चेष्टा की थी। श्रेणियों को अधिकार देने की बात की थी। उसका ही क्या फल निकला।'

वृद्धा से भर्राये स्वर से कहा—फल? शत्रु कभी निर्बल नहीं होता। जब मैंने श्रेणि अधिकार की बात चलाई थी तब भूस्वामियों ने विद्रोह किया। उन्होंने ही आभीरों को बुला लिया।

अचानक कोलाहल हुआ। दासों की एक क्रुद्ध भीड़ ने आक्रमण किया। वृद्ध रोकता रहा, किन्तु कुछ ही देर में तुमुल संघर्ष होने लगा। दासों को एक दास की हत्या के कारण रोष चढ़ आया था। इस संघर्ष में श्रेणिक शूद्र भी उच्चवर्णों से मिल गये थे क्योंकि वे भी श्रेणि संगठन और संघों में जहाँ एक ओर राज्य और वणिक श्रेष्ठियों से संघर्ष करते, दूसरी ओर दासों से बेगार लेना चाहते। अनेक व्यक्ति लोहू से भींग गये। वृद्ध चिल्लाता रहा—सर्वनाश का पथ यही है सौवीरो! तुम परस्पर संघर्ष कर रहे हो। क्या दास सौवीर नहीं हैं? क्या तुम दासों को मनुष्य नहीं समझते? आर्यो! मैं भागवत धर्म को मानता हूँ। ब्रह्म के सामने सब बराबर हैं......

किन्तु इस समय कोई सुनना नहीं चाहता था। दासों ने पहले तो बड़ा साहस दिखाया, किन्तु प्रजा के क्षत्रियों के सामने वे शीघ्र ही दबने लगे। वशातल प्रकालन का शरीर पैरों से कुचल सा जाकर धूलि में मिल गया। थोड़ी ही देर में दास भागने लगे। इसी समय आभीर सेना

ने अश्वों पर बैठकर आक्रमण किया। वे नगर में होती अशांति को रोकने आये थे। उन्होंने घोड़ों को भीड़ पर दौड़ा दिया। कोई आभीर, खड्ग से जो सामने आता, उसे काट देता, कोई कशाघात करता। देखते ही देखते वह युद्धावेश हाहाकार में बदल गया।

कुमार वृषकेतु अभी तक कोने में चुपचाप खड़ा देख रहा था। इस समय उसने ललकारा—सौवीरो! घेर लो। आज आभीर देखें कि सौवीरों का साहस देखकर पर्वत अपने स्थान से हिल जाते हैं। और वृद्ध अमात्य ने गरज कर कहा—सौवीरो! तुम्हें शपथ है। सौवीर भूमि की सौगंध है।

खड्ग बजने लगे। किन्तु आभीर घोड़ों पर थे। कुमार वृषकेतु ने आगे बढ़कर एक अश्वारोही पर खड्ग का आघात करके उसे नीचे गिरा दिया और वह घोड़े पर चढ़कर चिल्लाया—सौवीरो! मृत्यु एक बार आती है......

'घेर लो, घेर लो', भीड़ चिल्लाई। भीड़ ने आभीर सैनिकों को घेर लिया। रणनाद बढ़ गया। स्त्रियाँ भाग कर घरों में छिपने लगीं। किसी का बालक घोड़ों के नीचे रुँद गया। उस शव को उठाकर वह चिल्लाती भागने लगी। कुमार वृषकेतु के खड्ग ने अनेकों आभीरों की हत्या की, किन्तु वह आघातों से स्वयं क्षतविक्षत हो गया था। लगता था आभीर इस समय पिस जायेंगे। किन्तु तभी एक ओर से तूर्यनिनाद हुआ। अधिराज्ञी मदनमंथिनी भव्य हिरण्यमय वस्त्रों से सजी, ऊँचे तुरङ्गों के रथ पर दिखाई दी। उसके चारों ओर अनेक सैनिक थे। उन्होंने भीड़ पर आक्रमण कर दिया। भीड़ भाग चली। आभीरों ने वृद्ध प्रावृट को घेर लिया। कुमार वृषकेतु ने घोड़ा भगा दिया। कुछ ही क्षण में वह दृष्टि से ओझल हो गया। मदनमंथिनी रथ से उतरी। उसने भूमि पर पड़े असंख्य शवों को देखा। एकाएक उसके कानों में पड़ा—दास.....

वह आगे बढ़ी। वशातल प्रकालन ने टूटे-फूटे स्वर में कहा—दास......मृत्यु......डरो नहीं......

और उसका सिर लुढ़क गया। मदनमंथिनी देखती रही। फिर वशातल के मर जाने पर उसने एक आभीर सैनिक को बुलाया। कहा—यह युद्ध किसमें हुआ ?

'देवी', सैनिक ने कहा, 'दासों और त्रिवर्णों में उपद्रव हो रहा था। दास पिट गये।'

मदनमंथिनी क्रोध से काँप उठी। उसने कहा—और ?

'देवी ! हमें उपद्रव शांत करने को आना पड़ा ?'

मदनमंथिनी चुप खड़ी रही। उसका सौंदर्य देखकर सबने सिर झुका लिये थे। वह इस समय कठोर दिखाई दे रही थी।

सैनिकों ने वृद्ध प्रावृट के हाथ बाँध दिये और आगे बढ़ा लाये। मदनमंथिनी ने देखा और कहा—यह कौन है ?

वृद्ध ने मुस्करा कर कहा—तू कौन है ?

मदनमंथिनी की भृकुटि चढ़ गई। एक सैनिक ने कहा—ऐ बुड्ढे ! सावधान ! अधिराज्ञी से बातें करते समय विनय से शीश झुका ले।

वृद्ध ने कहा—ब्राह्मण प्रावृट को विनय सीखनी नहीं पड़ती, वह सदा से ही सिखाता आया है सैनिक ! तुम वेतन भोगी हो, तुम गौरव नहीं समझ सकते। तो यह उस आभीरराज भुमन्यु की दासी पत्नी है। अच्छा है, जब धर्म लोप होता है, तब दासियाँ रानी ही होती हैं।

मदनमंथिनी ने बढ़कर वृद्ध के मुख पर आघात किया। स्वर्णदण्ड के आघात से वृद्ध का अगला दाँत टूट गया। रक्त बह निकला। असह्य पीड़ा की यंत्रणा से उसका मुख विकृत हो गया। उसने टेढ़ी आँखों से देखा। कितना क्रोध था उन आँखों में। प्रतिशोध की भीषण ज्वाला थी।

मदनमंथिनी ने हँस कर कहा—एक दाँत के पीछे इतना रोष हुआ तुझे ? एक दास की मृत्यु का मूल्य कुछ नहीं ?

वृद्ध ने कहा—श्रेष्ठियों और क्षत्रियों ने जब विदेशी की दासता स्वीकार ली है, तब यह वृद्ध अमात्य क्या कहे ? उसे बोलने में पीड़ा से कष्ट हो रहा था। 'किन्तु दास का हत्यारा मैं नहीं हूँ। दासों को मैं ऐसे कुचलना नहीं चाहता। किन्तु नर्तकी ! मैं आभीरों का सर्वनाश कर दूँगा।'

मदनमंथिनी भी हँसी। वह रथ में चढ़ गई। कहा—इसे महाराज के पास ले जाओ। मैं आखेट से लौट कर आती हूँ सायंकाल। फिर वह मस्ती से हँस दी।

वृद्ध ने पुकारा—आभीर के पास नहीं सैनिक। मुझे तुम यम के पास ले चलो। परन्तु सत्य और न्याय का युद्ध पीढ़ियों तक चलता रहेगा। यदि तुम समझते हो कि एक मनुष्य की हत्या करके तुम मनुष्य का सत्य मार सकते हो, तो तुम कुछ नहीं समझते। जो वक्ष पर रक्त का चिह्न लेकर जाता है, वह विश्राम से सोता नहीं, वह उस रक्त का मूल्य माँगने लौटता है।

मदनमंथिनी ने कहा—सारथि !

'देवी', सारथि ने कहा।

'वन की ओर।'

कशा की ध्वनि हुई। तुरंग पथ पर बढ़े। उस समय शवों के बीच से मदनमंथिनी का रथ निकल गया। सैनिक वृद्ध को ले चले। दोनों ओर से प्रजा के लोगों ने देखा, वे वृद्ध अमात्य को बाँधे लिये जा रहे थे। किन्तु उन पर आक्रमण करने का किसी को भी साहस नहीं हुआ।

पथों को अन्त्यज आकर कोलाहल करते हुए साफ करने लगे। मृत व्यक्तियों को महिषों की गाड़ियों पर लादा गया और वे उन्हें प्रासाद की ओर हाँक ले चले। तब विक्षुब्ध नागरिक फिर पथ पर निकल आये

और छोटे-छोटे दल बना कर विवेचन और टिप्पणी करने लगे। उनमें असीम क्रोध था, किन्तु वे समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर वे करें भी तो क्या ?

× × ×

सनगा वृक्ष पर चढ़ी हुई लकड़ी तोड़ रही थी। उसकी दृष्टि रह-रहकर वन की कमनीय शोभा द्वारा भटक जाती और वह दूर सुन्दर हरीतिमा देखती रह जाती। पेड़ की ऊँचाई से दूर बहुत दूर के खेत मखमली दिखाई देते, जैसे रंग-बिरंगी चिलि मिका बिछा दी गई है। कहीं-कहीं खुटक बढ़इया वृक्षों के काष्ठ पर चोंच मारती दिखाई देती। उसकी दृष्टि घूमते-घूमते अचानक ठिठक गई। दूर एक बिंदु सा दिखाई दिया। वह आँख गड़ा कर देखने लगी। बिंदु धीरे-धीरे बड़ा होता गया और उसने देखा वह कोई अश्वारोही तेजी से घोड़ा भगाता चला आ रहा था। उसने आँख पर हाथ रख कर देखा। कुछ ही देर में घोड़ा पास आ गया और फिर हरीतिमा में छिप गया। सनगा आतुरता से धनुष-बाण को डाल से उठा कर कंधे पर बाँध कर उतर आई। जिस समय वह आश्रम के पास पहुँची उसने सुना, ओघवती चिल्ला रही थी—पट्टमहिषी ! देवी ! कुमार वृषकेतु युद्ध में घायल होकर आ गये हैं।

पट्टमहिषी ने सुना और बाहर दौड़ आई। सनगा ने जाकर देखा महिषी ने चीत्कार किया—कौन वृषकेतु ! पुत्र !

उनका स्वर कंठ में अटक गया। वे वृषकेतु से जाकर चिपट गई। वृषकेतु उस समय रुधिर से सना पृथ्वी पर पड़ा था। तुरंग की ग्रीवा से रक्त बह रहा था जो उसके पाँव तक बह आया था।

'पुत्र ! मेरे पुत्र !' महिषी ने रोते हुए कहा, 'तुझे किसने घायल कर दिया पुत्र !'

सनगा ने देखा वृषकेतु ने उठने का क्षीण प्रयत्न किया, किन्तु वह

उठ नहीं सका। महिषी ने कहा—रहने दे वत्स ! रहने दे। अमात्य कहाँ हैं ?

'पितृव्य को आभीरों ने पकड़ लिया', वृषकेतु ने रुक-रुक कर कहा। महिषी चिल्लाई—महामात्य !

सनगा आगे बढ़ आई। पितृव्य को शत्रुओं ने बंदी बना लिया ? तब ? वह सोचना चाहती थी किन्तु सोचना तो अत्यन्त कठिन था।

वृषकेतु ने कहा—पानी......

सनगा दौड़ कर जल लाई और पात्र उसके मुख से लगा दिया। वह गट-गट करके पी गया। उसके सिर पर रक्त की धाराएँ जम गई थीं। जल पीने से उसे कुछ चेतना आई। उसने बैठ कर कहा--अम्ब !

'पुत्र !' महिषी ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा।

'देवी ! दासों ने आक्रमण कर दिया।'

'दासों ने ?' पट्टमहिषी ने परमाश्चर्य से कहा।

'हाँ आर्ये ! श्रेणियों ने उन्हें मारा। आभीरों ने आकर हमें कुचलने का यत्न किया। हमने उन्हें हरा भी दिया था किन्तु तभी नई अधिराज्ञी मदनमंथिनी अपनी सेना के साथ उस ओर से निकल आई।'

महिषी के नेत्रों में अब क्रोध की झलक दिखाई देने लगी।

'मदनमंथिनी !' उन्होंने कहा, 'वह कल की वेश्या ?'

'हाँ अम्ब,' वृषकेतु ने कहा और वह फिर लेट गया।

'पितृव्य का क्या हुआ ?' सनगा ने कहा। 'शीघ्र कहें कुमार ! मेरा और संसार में कौन है ?'

महिषी ने देखा। फिर उन्होंने कहा—सनगा ?

'अम्ब !' सनगा ने आँखे फाड़ीं।

'पुत्री ! पितृव्य नहीं हैं तो क्या, हम तेरे सब कुछ हैं। भयभीत न हो।' उनके स्वर में सचाई थी। महिषी की बात से सनगा को सांत्वना मिली। उसने आँखें पोंछ दीं। उनमें भय से अश्रु आ गये थे।

वृषकेतु ने कहा—आर्ये। वहाँ एक दास आया था। उसको पितृक जानते थे। वह विद्रोही हो गया। उसी ने आक्रमण करवा दिया।

'कौन था वह ?' महिषी ने पूछा।

'कोई था वशातल प्रकालन !'

वृषकेतु ने घृणा से कहा, परन्तु सनगा को जैसे बिजली छू गई। पूछा—उसका क्या हुआ ?

'उसने पितृक को मरवा देने का यत्न किया सनगा, वह श्रेणियों के क्रोध का भाजन बना।'

'कृतघ्न कुत्ता', सनगा ने कहा। वह और कहना चाहती थी किन्तु कण्ठ रुँध गया। उसने घृणा से थूक कर कहा—दास ! उसका यह साहस ? उसने पितृव्य के विरुद्ध सिर उठाया। आपने उसे कुचल नहीं दिया वहीं !

वृषकेतु ने कहा—उत्तेजित न होओ सनगा। पितृव्य बंदी हो गये......

'पितृव्य !' सनगा ने चीत्कार किया। महिषी ने कहा—क्या कहा बंदी हो गये ? पुत्र ! तू कहाँ था ?

'अम्ब ! मैं तब प्राण बचा कर भाग आया। अन्यथा वे मुझे भी बंदी बना लेते,' वृषकेतु ने कहा।

'धिक्कार है तुझे', महिषी का स्वर हठात् गूँज उठा। 'तूने क्षुद्रक कुल का सिर नीचा कर दिया। तू महामात्य को शत्रुओं के हाथ में छोड़ आया कायर ! जिस व्यक्ति ने अपने जीवन को न्याय और सत्य के लिये होम दिया है, तूने उसे उन बुभुक्षित वृकों के हाथों में छोड़ दिया ? क्षुद्रक कुल के एक उत्तराधिकारी ने अपने विश्वस्त पात्र को त्याग दिया ? मूर्ख ! यहाँ गण था और उसी का प्रभाव है। तू क्या कुरु पञ्चाल समझ कर छोड़ आया कि ब्राह्मण अवध्य है ? और गण यदि इस पर विचार

भी करता, तो क्या आभीर करेगा ? वे सुख के साथी भूस्वामी कहाँ हैं ? वे आभीर के चरणों पर जिह्वा लटकाये कुक्कुरों की भाँति बैठे हैं। तू उसे छोड़ आया है जिसने अपने आपको हमारे लिये मिटा दिया ?'

सनगा ने देखा महिषी के नेत्र लाल हो गये। उसे याद आने लगा, वशातल प्रकालन। क्या हुआ उसे शूर्पारक से.लौटने पर ? क्यों वह जघन्य हो गया ? अधिकार की भूख उसमें कैसे आ गई ? श्रमणों के उपदेश तो वह सदैव सुनता था कि अधिकार लोलुपता है। दूसरों का धन नहीं छीनना चाहिये। जो दास स्वामी को इस जन्म में जितना सुख देता है, अगले जन्म में वह उतना ही सुख पाता है। दुख से ही मुक्ति होती है। तपस्या करके शरीर को कष्ट देने में ही सुख मिलता है। वशातल प्रकालन, इतना भ्रमण किया था उसने, फिर वह पढ़ा भी था, क्या हो गया उसे ? वह आखिर यह बराबरी का हौंसला कर कैसे सका ? क्योंकि मदनमंथिनी—एक दासी वेश्या ने आभीरराज की कृपा से कुछ अधिकार प्राप्त कर लिए हैं ? तो क्या अधिकारों का ज्ञान इन दासों को है ? यह वह नहीं मानते हैं कि जो है वह ब्रह्मा ने बनाया है ? मानें कैसे ? आचार्य श्रुतश्रवा कहते थे कि क्षत्रियों और वैश्यों ने जो ब्राह्मणों से द्वेष किया है। उसको देखकर ही दास भी बढ़ रहे हैं। क्षत्रियों को ब्राह्मण का विरोध नहीं करना चाहिए। वे क्या शूद्र हैं जो सम्पत्ति चाहते हैं ? शूद्र तो ब्राह्मण का चरण है। दास, वह तो सामग्री है। वह न जाने ज़ल्दी-जल्दी, क्या-क्या सोच गई। महिषी की आँखों में अब भी ज्वाला थी। सनगा ने देखा। उसने कहा—अम्ब !

'क्या है सनगा !' महिषी ने कठोरता से कहा।

'कुमार के वक्ष से रक्त बह रहा है,' उसने कहा।

वक्ष से रक्त बहना सुनकर महिषी को आनन्द हुआ। एक स्फुरण हुआ। उनका पुत्र युद्ध में वक्ष पर आघात लेकर आया है। तब वह भीरु नहीं है। वह कायर नहीं है। किन्तु उन्होंने कहा—वह पराजित होकर

आया है सनगे ! यदि वह रक्त होता तो कुलीन का रक्त पुकार उठा होता क्योंकि वह क्षत्रिय का पवित्र रुधिर होता ।

सनगा को सहानुभूति हुई । कहा—नहीं अम्ब ! वे पराजित होकर नहीं आये । मनुष्य की पराजय उस दिन होती है जब उसका हृदय भी हार जाता है । ओघवती !

'देवी', उसने कहा ।

'पैंख्या को बुला । कुमार को आश्रम में ले चलें । और दास कहाँ है ?'

'बुलाती हूँ देवी ।' वह चली गई ।

वृषकेतु मूर्च्छित हो गया था । सनगा को भय होने लगा । महिषी ने कहा—सनगे ?

'अम्ब !'

'तुझे भय तो नहीं है ?'

'नहीं देवी ।'

'तू यहीं रह । जब तक तेरा पितृव्य लौट कर नहीं आता तब तक तू मेरी पुत्री है । यदि वे', महिषी का स्वर भर्रा गया—'नहीं आये......'

'अम्ब !!' सनगा चिल्लाई । वह जैसे कह रही थी कि यह नहीं कहो, मत कहो, परन्तु महिषी ने दृढ़ता से कहा—तो मैं तेरा विवाह कराऊँगी पुत्री । महामात्य ने क्षुद्रक कुल का जो उपकार किया है उसे क्या मैं भूल सकूँगी ?

दोनों स्त्रियाँ रो दीं । दासों और पैङ्ख्या को साथ लेकर ओघवती आती दीख पड़ी, तभी निकट ही शिकारी कुत्तों के भूँकने की कर्कश ध्वनि सुनाई पड़ी ।

'शोण !' महिषी ने भर्राये गले से पुकारा ।

शोण के हाथ से एक दास ने लौह शृंखलाओं में बँधे श्वानों को ले लिया और शृंखला खींचता हुआ वह उन्हें मांस खिलाने लेकर चला गया ।

शोण श्वेत अश्व से उतरा। उसके पीछे मृग बँधा हुआ था। अन्य दास मृग को खोलने लगे।

शोण ने माता की वह भयाकुल पुकार सुनी तो उसके कान खड़े हो गये। वह आगे बढ़ा उसकी दृष्टि वृषकेतु पर पड़ी। एक क्षण देखा और फिर उसने कहा—भ्रातर! रक्त! किसने बहाया है यह रक्त? इस रक्त के लिये मैं संसार को हिला दूँगा, इस रक्त के लिए......

किन्तु महिषी ने कहा—तू ही तो स्त्री को निर्बल समझता था शोण! तेरा अग्रज पराजित होकर लौटा है। और मैं तेरी जननी हूँ। मैं तुझसे भिक्षा माँगती हूँ।

'कौन कहता है', शोण ने बढ़कर कहा, 'कि तुम असमर्थ हो अम्ब। यदि तुम रोओगी तो यह वसुन्धरा आर्त्त होकर पुकारने लगेगी। यदि तुम हँसोगी तो समुद्रों में ऊभ-चूभ होगी। तुम! तुमने मुझ जैसे मांसपिण्ड को वज्र.का पर्वत बनाया है अम्ब!'

निस्संदेह वह बहुत भावुक हो गया था। उसके सामने उसके कुल का रक्त बह रहा था। और क्षुद्रक कुल। जिसके पराक्रम ने एक दिन सौवीरों के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कुल को अपने सामने जानुनत करवा दिया था। और केतु की उपाधि अर्पित की थी। उसी महान कुल का उत्तराधिकारी वृषकेतु, शोणकेतु का अग्रज, अहिकेत का पुत्र, आर्य दीर्घकेतु का पौत्र, आर्य भद्रकेतु का प्रपौत्र। वह क्षुद्रक वंश जिसके पूर्वजों ने एक दिन नागों को पराजित करके उनकी कलुषित संतानों के रुधिर से गणागार धोया था। वही जो क्षुद्रक कुल से केतु वंश प्रसिद्ध हो गया। वह केतुवंश जिसकी पताका को लेकर जब ब्राह्मण विल्वोक भूरिश्रवाश्राग्रहार्यायण मगध गया था तो यहाँ के कुलगणों ने मागधी दासियाँ भेजी थीं। जब दक्षिण के पाण्ड्य और चोल देश के यात्री आये थे, तब आर्य दीर्घकेतु ने उन्हें ताम्रलिप्ति और पौण्ड्र के व्यापारियों के साथ-साथ, अपने ही बाहुबल से, अंबष्ठ और मालवों को हराकर, शतद्रु और ऐरावती नदियाँ पार करा दी थीं। नर्मदा-

तीरस्थ भरुकच्छ के पण्यों में जब सौवीर वीरों को लेकर आर्य भद्रकेतु खड़े हो गये थे, तब चंद्रोपासक म्लेच्छ अरबवासी अपने-अपने पोत और नौकाओं पर चढ़ कर समुद्र में भागने के लिए तत्पर हो गये थे, क्योंकि उनका प्रचण्ड गौरव सुदूर तक फैला हुआ था, उनके खड्ग को लोग सहस्रधारा कहते थे। कहते हैं जब प्रथम व्यापक गणतन्त्र बनाने का आर्यावर्त्त में यत्न हुआ था तब इसी केतुकुल के वीरों ने दशार्ण, वत्स, कोसल को पराजित करके, मुख में खड्ग दबाकर तैर कर शोण नद को पार करके, औड्र के अनार्य राजवंश को धूलि में मिलाकर, ताम्रलिप्ति के देशांतर में जाने को तत्पर पोत समूहों पर अपने झण्डे गाड़ दिये थे। इसी केतु वंश ने नागों के शासन के बाद कुलों की अयोग्यता देखकर, उन्हें असमर्थ जानकर, कान्यकुब्ज के क्षत्रियों के आक्रमण काल में एकतन्त्र स्थापित किया था कि ब्राह्मणों का सर्वाधिकार नहीं हो जाय। मरुधन्व के इधर केतुकुल के भय से कभी भी किसी आर्य शासक ने चरण नहीं रखा। आज उसी केतु कुल का यह अंत ! आज उसी कुलीन वंश का यह उत्तराधिकारी भूमि पर घायल पड़ा है ? और महामात्य !

उसे ध्यान आया। उसने कहा—अम्ब ! भिक्षा माँगती हो। माँगो। प्रथम यह कहो कि महामात्य कहाँ हैं ?

'पुत्र', महिषी ने कहा, 'वह व्यूहवादी, वह कृष्ण यजुर्वेदीय आंगिरस गोत्रीय ब्राह्मण जो गणों का पुराना मित्र है क्योंकि वह शाकद्वीपी ब्राह्मण है, क्योंकि वह भागवत पांचराज का उपासक है, आज अनेक वर्षों से तुम्हारे पवित्र कुल पर उपकार करके, आभीरों का वन्दी हो गया है। कहा जाता है कि यादव कृष्ण का पुत्र साम्ब जब उनके पूर्वजों को द्वारका लाया था, तब द्वारका के गृह युद्ध के बाद द्वारका का सर्वनाश हो जाने पर वे ब्राह्मण मगध की ओर जाने लगे। उस समय केतुकुल के क्षत्रियों ने यज्ञ में मंत्र पढ़ते हुए जब मरुद्गण का आवाहन दिया था, तब महामात्य के पूर्वजों ने उनकी स्तुति की थी। तब से केतुकुल ने उन्हें नहीं

जाने दिया। वत्स ! उसी पवित्र ब्राह्मण कुल में महामात्य प्रावृट का जन्म हुआ है, जिसके ब्राह्मण कुरुपंचाल के ब्राह्मणों की भाँति केवल वाग्विवाद नहीं करते थे, वरन् तुरंगों पर चढ़कर आयुध लेकर युद्ध करते थे। इसी वंश के सहिष्णु ब्राह्मणों को जब मिथिला के ब्राह्मणों ने नीच कहा था, तब केतुकुल के सात वीरों ने मिथिला में जाकर ब्राह्मणों के यज्ञ को ध्वंस करके अपने प्राणों की आहुति दी थी। कहते हैं जैसे पुराकाल में अङ्गिरा और उशनाभृगु.के गर्जन से स्फुरित होकर वज्रधर इंद्र ने बलव्यंस के पुत्र वृत्रासुर को जल के फेनों में पत्थर मार-मार कर मार डाला था, वैसे ही इसी महामात्य के कुलीन वंशीय ब्राह्मणों ने जब क्षत्रिय केतुकुलीन वीरों की स्त्रियों का उपनयन कराया था, तब केतुकुल की स्त्रियों की रक्षा के हित उठे खड्गों को देखकर, केतुकुल के वीरों ने शबर और पुलिंदों को शतद्रु में डुबाकर मार दिया था......

महिषी का गला रुँध गया। शोण ने हाथ उठाकर कहा—रहने दो अम्ब ! मैं और नहीं सुन सकूँगा। मैं इसे और नहीं सुन सकूँगा......

'नहीं पुत्र', महिषी ने पुकारा, 'जब लिच्छवि, बज्जिय, शाक्य, कोलिय और मल्ल एकतन्त्रों को समाप्त करके अपने गण खड़े कर रहे थे तब इसी केतुकुल के भागवत ब्राह्मणों ने कर्मकाण्डियों और पाखण्डी ब्राह्मणों का विरोध करके केतुकुल के साथ सौवीरों के गण को ब्राह्मणों के हाथों से मुक्त किया था। और .....'

शोण झपट कर चला गया और श्वेत अश्व के पीठ पर उछल कर चढ़ा। क्षण भर में ही तुरंग दौड़ चला। उस समय शोणकेतु अश्व की पीठ को जंघाओं से दबाकर खड़ा था और उसके उठे हुए हाथ में उसका लम्बा खड्ग चमक रहा था।

'पुत्र !' महिषी ने पुकारा।

'अम्ब ! मैं महानगर......'

फिर सुनाई नहीं दिया। पुकार भी विलीन हो गई क्योंकि तुरंग काफी

आगे निकल गया था। सनगा आश्चर्य से देखती रही। उसे याद आया तो क्या पितृव्य को ब्राह्मणत्व का गर्व नहीं? क्या आचार्य श्रुतश्रवा सत्य कहते थे कि गणों के ब्राह्मण उच्च ब्राह्मण नहीं? क्या गणों के ब्राह्मण अपने को क्षत्रियों से उच्च नहीं गिनते? सनगा को अपने क्षत्रियत्व पर गर्व हुआ।

वह चिन्ता में पड़ गई। ओघवती ने बढ़ कर कहा—देवी! आश्रम में चलें।

'चलो', महिषी ने कहा। वे कुमार वृषकेतु को उठाकर भीतर ले गये।

× × ×

आभीरराज भुमन्यु के प्रासाद में नर्त्तकियों का नृत्य हो रहा था। आर्य गंधकाल के यहाँ ठहरे हुए मणलूरु के गायक ने अभी-अभी अपना गायन समाप्त किया था। आभीरराज भुमन्यु इस समय भी मदिरा पिये हुए था। नर्त्तकियों को प्रायः नग्न देख कर उसके मन में एक उत्तेजना हो रही थी। आभीर महिषी सौरभेयी आभीर वेश में एक सुवर्णपट्ट पर बैठी थी। अधिराज्ञी मदनमंथिनी और सुवर्चला आभीरराज की दूसरी ओर उपस्थित थीं। आर्य गंधकाल आभीरराज के सिंहासन के पास एक छोटे आसन पर बैठा था।

नर्त्तकियों का नृत्य समाप्त हो गया। आभीर सभासदों की सौवीर सभ्यों में कहीं अधिक संख्या थी।

भुमन्यु ने मुड़कर उस सौवीर स्त्री को देखा जो चमर हिला रही थी और फिर गंधकाल की ओर देखा। गंधकाल जानता था कि आभीरराज का नियम है कि धनी हो, दरिद्र हो, कुलीन हो, नीच हो, ऐसा न हो कि कोई स्त्री सामने आ पड़े और अदेखी रह जाय।

नर्त्तकियाँ चली गई। गंधकाल ने निकट आकर धीरे से कहा—महाराज! विद्रोही प्रावृट पकड़ लिया गया है।

'तो उसकी हत्या करवा दो', आभीरराज ने कहा।

'नहीं', गंधकाल ने कहा। फिर सिर हिलाकर कहा—महाराज भूल

गये हैं कि उसका सौवीरों पर अत्यन्त प्रभाव है। यदि उसकी हत्या कर दी गई तो विद्रोह हो जाने का भय है। यही श्रेयस्कर है कि उसे लोभ देकर अपनी ओर कर लिया जाय। फिर कण्टक सदैव के लिए दूर हो जायगा।

'वह लम्बा रास्ता है आर्य गंधकाल', भुमन्यु ने झुक कर कहा।

'महाराज! विनय है कि मेरे विचार पर ध्यान दिया जाय। यही ब्राह्मण वृहद्वती का पिता है', गंधकाल ने कुटिलता से कहा।

आभीरराज भुमन्यु की जीभ में जैसे पीड़ा हो आई। झट एक बार दाँतों में उसे हिलाया। वह उस स्त्री की लात अभी भूला नहीं था। परंतु वह कितनी सुन्दर थी। जैसे इन्द्रधनुष की मादकता पर थिरकता हुआ मोर! वैसा ही जैसा अर्वली की गिरि श्रेणियों पर भुमन्यु ने नृत्य करते समय मेघों की छाया में पुकारते हुए देखा था। उसका हृदय फिर द्रवित हो गया। उसने कल्पना में वृहद्वती के गौर स्निग्ध शरीर की मांसल ऊष्मा का अनुभव अपने रोम-रोम में स्फुरण फेंकती ऊर्शवासना में किया और फिर उसे ध्यान आया कि यह शत्रु ही नहीं है। यदि इससे सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाय तो सदा के लिए यह वैमनस्य दूर हो सकता है।

उसने कहा—वह कहाँ है?

'देव! मैंने उसे बुलवा लिया है', गंधकाल ने उत्तर दिया।

सभा के विशाल खुले द्वार की ओर दिखा कर गंधकाल ने इंगित किया—उसके निकट ही। दुर्गद्वार को खोल दिया गया है।

'क्यों?'

'मैं चाहता था कि उसका समर्पण या हत्या प्रजा देखे और आतंकित हो सके।'

'सैन्य प्रबन्ध किया है?'

'नहीं।'

'क्यों?'

'देव ! प्रजा भयभीत है। और वह सैन्य देखकर नहीं आयेगी। मैंने दूसरा काम किया है।'

'क्या आर्य ?'

'देव ! मैंने सेना महानगर में बिखरा दी है। सेना के अनेक दल महानगर में घूम रहे हैं। उनसे आतंक भी बना रहेगा।'

'अति उत्तम !' आभीरराज ने कहा।

महिषी सौरभेयी ऊब गई थीं। झुककर सुनने लगीं।

गंधकाल कह रहा था—अधिराज्ञी मदनमंथिनी ने प्राकृट को बंदी किया है।

सौरभेयी ने जब आभीरराज के मुख पर आश्चर्य और प्रशंसा का भाव देखा उसे ईर्ष्या हुई। उसने मुड़कर देखा आर्य ह्रीमान उसे बहुत ही लोलुप किन्तु छिपी दृष्टि से देख रहा था। वह एकबार अकपका गई किंतु फिर उसने अलक्ष्य भाव से मदनमंथिनी को देखा। फिर सुवर्चला को। उसके हृदय में एक सनसनी होने लगी, जैसे उसका पद अब उससे छिना जा रहा था। आर्य गंधकाल ने इंगित किया। कुछ सैनिक और दण्डधर बाहर चले गये। फिर सभा चैतन्य हो गई। वे सैनिक मुक्तद्वार में से फिर लौटे। अब उनके आगे प्राकृट था। वह शीश उठाये निर्भय सिंह सा बढ़ता चला आ रहा था। उसके हाथ खुले हुए थे। उसके पाँवों में वही खल्लकबद्ध थे और वह ऐसी दृष्टि से सबको देखता आ रहा था जैसे सब उसके सामने छोटे-मोटे कीड़े थे। उनको उसने योग्य प्रतिस्पर्धी ही अनुभव नहीं किया कि उन्हें अपनी घृणा-शक्ति के पात्र के रूप में भी मान लेता। वह अदम्य साहस देख कर आभीरराज के मुख पर गंभीर गौरव आया, आया अपनी विजयिनी सत्ता का आभास। सुवर्चला, ह्रीमान और अन्य आर्यों के मुख निष्प्रभ हो गये। केवल गंधकाल के मुख पर ऐसा दुहरा भाव हो गया कि यह पता चलाना कठिन था कि वह आभीरों के विरुद्ध षड्यंत्र में लगा है, या वह सौवीरों के विरुद्ध कुचक्र

कर रहा है। उसका यह अनुभव सिद्ध भाव निस्संदेह उसकी सफलता थी। मदनमंथिनी के नेत्रों में घृणा की ज्वाला जल उठी। आभीर महिषी सौर-भेयी के लंबे नख वाली तर्जनी उसके गाल पर घूमने लगी और वह कुछ झुक कर पट्ट पर बैठी रही।

प्रावृट को सभा के बीच में लाकर खड़ा कर दिया गया। आर्य गंधकाल ने कहा—महामात्य! महाराज को प्रणाम करें, वे आपसे प्रसन्न हैं।

प्रावृट हँसा। कहा—दिनरात परिश्रम करने वाले सौवीरों के सम्मुख जो शीश झुका है वह क्या उसके सम्मुख झुकेगा जो अन्यों को विश्वास-घात के अलातचक्र में फेंक चुके हैं गंधकाल! तुम्हारा महाराज नितांत मूर्ख है कि वह अपने प्राणंतक शत्रु को देखकर प्रसन्न हो रहा है।

अमात्य का वज्रसाहस देखकर ह्रीमान काँप गया। गंधकाल का चातुर्य फीका पड़ गया और मदनमंथिनी के मुख से निकला—उई माँ! जिसे सुनकर अमात्य के होठों पर हँसी छा गई और उसने सिर मोड़कर कहा—वेश्यापुत्री!

मदनमंथिनी का मुख क्रोध से तमतमा उठा।

आभीरराज चकित रह गया। किंतु उसने गंभीर स्वर से कहा—विनय सीखो बंदी! और मुड़कर कहा—आर्य गंधकाल।

गंधकाल की दृष्टि ने देखा कि महादानपति, महाधर्माधिकरणिक से लेकर महापीलुपति तक वृद्ध का वध करवा देने का इंगित कर रहे हैं। आभीरराज का सम्बोधन सुनकर उसने कहा—महाराज शांत रहें। कौन नहीं जानता कि गरजकर उठने वाला मेघ सूर्य के द्वारा शोषित जल ही होता है। उसके अहंकार का सत्व उसका अंधकार है, और उसका खंड-खंड होकर गिर जाना आवश्यक है। समर्थ को सम्मान का विषय, अपने असमर्थ शत्रु के बल से परे समझना चाहिये। महामात्य सहज ही कैसे स्वीकार करेंगे। यह तो विश्वासघात न हो जायेगा कि वे कल तक केतु

कुल के दास थे आज आपके हो जायें ? उन्हें बौद्धिक ज्ञान चाहिये कि आभीर ही सौवीरों का कल्याण कर सकते हैं। साधारण धन उन्हें मोहित नहीं कर सकता। फिर उसने प्रावृट से कहा—महामात्य! सौवीर प्रजा संतुष्ट हो रही है। आप ध्यान से देखिये। आपको नया अनुभव होगा।

'सुख!' महामात्य ने चिल्लाकर कहा, 'तुम मुझे प्रावृट, आर्य संहनन पुत्र प्रावृट को नहीं बहला सकोगे गंधकाल! तुम अपनी भूमि के लिये अपना गौरव बेच चुके हो, किन्तु सौवीर आज तुम्हारे पाप के पर्यंकों पर सोने के अपराध का प्रायश्चित्त पत्थरों पर सो-सोकर, कर रहे हैं। तुम्हारे व्याघ्र और श्वान जब मांस खाते हैं, तब सौवीर कृषक से आभीर सैनिक सब लूट कर उसे भूख दे जाते हैं। तुम मनुष्य के शव को ठोकर मारकर हीरक और मरकत के सोपानों पर चढ़ते हो, तब सौवीर बालक धूलि में हाहाकार करते हुए पाषाणों पर अपने गौरव के निकेत शीशों को खंडित करते हैं।

आर्य ह्रीमान ने आभीरराज की ओर इंगित किया। बोलने की आज्ञा प्राप्त हुई। उसने कहा—प्रावृट! तेरी कन्या ब्रहद्वती छोड़ दी जायेगी।

प्रावृट के मुख पर चिन्ता दिखाई दी। ऐसा लगा वह पराजित हो जायेगा। क्षण भर लगा जैसे वह व्यथा के सिंधु में गिर गया है। और तब सबने देखा कि प्रचण्ड लहरों में से वज्र निनाद करता व्योममण्डल में प्रतिध्वनि भरता हुआ निकला। उसने हँसकर कहा—एक अपनी दुहिता को देखूं कि सहस्रों सौवीर कन्याओं के लिए रोऊँ, जो तुम्हारे पुट-बद्धों के नीचे अपनी लज्जा को कुचले जाते देखकर चिल्लाती हैं। जिनके सौमंगल्य को तुम्हारी वाहिनी ने रक्त से धोया है, उन्हें देखूँ कि अपनी पुत्री को देखूँ? यदि तुम मुझे खंड-खंड कर दो तब भी आङ्गिरस प्रावृट अपना सौवीर गौरव नहीं छोड़ सकता। जिस पट्ट पर आज आभीर बर्बर बैठा है—वृद्ध का भर्राया स्वर उठा—एक दिन इसी पर एक नाग भी बैठा था किंतु सौवीर प्रजा ने उसे समूल उखाड़ कर फेंक दिया।

स्वतन्त्रता जाग्रत सन्नद्ध व्यक्तियों के चरण चूमती है। जहाँ विश्राम, अकर्मण्यता और स्वार्थ के नीच भाण्ड और वेश्याएँ राज्य करती हैं, वहाँ स्वतंत्रता नहीं रहती। इसीलिये स्वतंत्रता सौवीरों को छोड़ दी गई है। जिस दिन अपने तरुणों के पवित्र ऊष्मामय रक्त से सौवीर इस भूमि को धोयेंगे उस दिन उनके शवों पर, उन बलिदान के पुष्पों पर चरण धरकर जयजयकार की नूपुर ध्वनि करती हुई, सूर्य की उल्का उठाये हुए स्वतंत्रता फिर सौवीर भूमि में पदार्पण करेगी। उस स्वतंत्रता को तुम चाहते हो मैं विश्वासघात दूँ? मूर्ख और जघन्य प्राणियों! सौवीर प्राव्रट अपने हृदय का रक्त देगा कि यह इस पीढ़ियों के पाप को मिटा सके। स्वतंत्रता की शिखा तब जलती है, जब राष्ट्र के दीप में स्वतंत्रता के सैनिक अपना रुधिर तैल के स्थान पर भरते हैं। जब माताएँ अपने पुत्रों के कटे हुए विजयी शिरों के हँसते हुए वंदनवार टाँगती हैं तब स्वतन्त्रता शवों की चिलिमिका पर पाँव धरती हुई आती है। सौवीरो! तुम प्रचण्ड वीरों की संतान हो। तुम कदर्य बन कर इन मुट्ठी भर बर्बर आभीरों के चरणों पर बैठे हो......

'महामात्य!' आर्य गंधकाल ने उसे हठात् काट दिया। और कहा—महामात्य! उसने स्वर बदल कर कहा—पुष्प एक बार खिलता है, और सुवर्णावसर बार-बार नहीं आते। आप भूल कर रहे हैं।

'भूल कर रहा हूँ?' प्राव्रट ने कहा, 'जिसके हृदय में विद्रोह की वह्नि जलती है, वह उसके शरीर में समाप्त नहीं हो जाती। गंधकाल वह महा-गिरियों के वक्ष को भी फोड़ने की सामर्थ्य रखती है। तुम दुधमुँहे सौवीर बालकों के अधरों की मुस्कान छीनकर आभीर के मदिरापात्र में डाल देना चाहते हो? मैं उनकी अबोध आँखों में नये जीवन के स्वप्न देखता हूँ। उनसे विश्वासघात करूँ जो मेरे हैं, जो संसार को सुन्दर बनाते हैं, और तुम्हारी ओर बोलूँ जो मनुष्य के हृदय और मेधा को स्वर्ण से तोल-तोलकर उसे निष्प्राण बना देते हो?'

'अहाहा !' आभीरराज ने हठात् कहा, 'परमवीर है। हमें उसे देख कर आश्चर्य हुआ। यह तो मनुष्य है, सौवीर नहीं है।'

उसकी बात सुनकर सन्नाटा खिंच गया। आभीरराज ने कहा—आर्य प्रावृट ! तुम साहसी हो। यह हमने आज देखा।

प्रागट ने कहा—सुना गंधकाल। यह तुम सौवीरों को मनुष्य ही नहीं मानता ! और फिर उसने आभीरराज से कहा—विदेशी ! तूने कुछ नहीं देखा। अभी तेरे मदांध अश्वों ने सौवीर प्रजा को कुचला है, परन्तु उनके हृदयों से निकलती आहें नहीं देखीं। अभी तूने ग्रामों के अबोध कर्मकरों और कृषकों के गृह जलाये हैं, तूने यह नहीं देखा कि प्रतिशोध आज तेरी सभा के बीच में गर्जन करने लगा है। तूने यह नहीं देखा कि सौवीरों के एक-एक, इस दुर्ग पाषाणों में से एक-एक, एक-एक कुल ने उठा कर रखा है, यह गण का रक्तागृह था, यहाँ का एक-एक पाषाण स्वतंत्रता की ज्वलंत गाथा को चिल्ला-चिल्ला कर पुकार रहा है...

वृद्ध कह भी नहीं पाया था कि आभीरराज चिल्लाया—सावधान ! तू जानता है मैंने यह गण, यह देश, खड्ग के बल पर पराजित किया है।

उसके हाथ में नंगा खड्ग चमकने लगा !

प्रावृट ने कहा—पागल ! तूने यह भूमि नहीं जीती, इस गण के विश्वासघातियों को पराजित किया है। लौह काटना मनुष्य के गले को काटने से कहीं अधिक सरल कार्य है विदेशी बर्बर ! तूने कुछ नहीं देखा। तूने मुझे बाँध कर समझा है कि तूने सहस्रबाहु सौवीर भूमि को बाँध लिया है, जिसकी प्रचण्ड हुंकारों से एक दिन उत्तरापथ के महावीर भी थर-थर काँपते थे, न उन सौवीरों पर अज्ञातकुलशील विदेशी बर्बर ! तू शासन करेगा ? प्रावृट हँसा। उसका व्यंग्यमय कठोर हास्य सभा में गूँज उठा।

आभीरराज विक्षुब्ध हो गया। मदनमंथिनी ने चिल्लाकर कहा—इसकी हत्या करें महाराज !

'अच्छा !' प्रावृट ने कहा, 'तो वेश्या मदनमंथिनी ने आभीर का भी मंथन कर दिया ?'

'महाराज !' मदनमंथिनी चिल्लाई।

प्रावृट ने मुड़कर सुवर्चला को देखा। उसने दोनों हाथों में मुख छिपा लिया। सौरभेयी ने कहा—ले जाओ इसे। शृङ्खला बाँधकर कारागार में डाल दो !

'स्त्री !' प्रावृट ने हँसकर कहा, 'सिंह जब शृङ्खलाओं में बँध जाता है तब क्या वह किसी और पशु के स्वर से बोलने लगता है। वह तो गर्जन करता है......'

मदनमंथिनी ने सौरभेयी को देखा जिसने बाधा डाल दी। बाधा डाली क्योंकि सौरभेयी इन दोनों स्त्रियों को अपने सामने स्वामिनी नहीं देख सकती थी। आभीरराज समझ गया, परंतु चुप रह गया, क्योंकि वहाँ सब आभीर सैनिक और अधिकारी कभी आभीर स्त्री के सामने किसी और स्त्री को समानता का आसन देने को तत्पर नहीं थे।

सैनिक प्रावृट को सभा द्वार की ओर ले चले। यहाँ प्रावृट ने देखा कि प्रजा भी खड़ी देख रही थी। प्रजा ने जयजयकार किया—जय ! महामात्य प्रावृट की जय !

सैनिकों ने दण्ड उठाये। अचानक एक तीव्र गति से भागता हुआ अश्व भीतर आया। उस पर खड्ग उठाये कुमार शोणकेतु बैठा था। उसने प्रावृट के रक्षकों पर आक्रमण किया। दो सैनिक गिरे। उसने कहा—पितृव्य भागिये ! मैं आ जाऊँगा, मेरी चिंता छोड़िये।

प्रजा की भीड़ सैनिकों पर टूट पड़ी। वृद्ध भीड़ में मिल गया। कुमार शोणकेतु ने सामने के सैनिक के सिर पर खड्ग मारा। उस चोट से शिरस्त्राण फटा, और फिर सिर बीच में से कट गया। एक आँख इधर, एक आँख उधर। उस आघात से आभीर भयभीत होकर हट गये। सौवीर

शोणकेतु ने चिल्लाकर कहा—तुमने छल से दुर्ग जीता है बर्बरो। सौवीरों का बल नहीं देखा।

एक बलिष्ट आभीर घोड़े पर बैठकर बढ़ा। जब वह निकट आया शोणकेतु ने खड्ग उठाकर आघात किया। उसका घोड़ा ग्रीवा पर से ऐसा कट गया कि सिर नीचे गिर गया। उसका आरोही भय से आँख मींच कर नीचे लुढक गया।

सैनिक चैतन्य हुए। सभासद् बाहर आने लगे। सौरभेयी ने उस वीर मूर्त्ति को देखा तो वह देखती रह गई, क्योंकि उसी समय बाईस सैनिकों ने उसे घेर लिया। शोण तुरंग पर बैठकर ऐसा खड्ग चलाता रहा कि कुछ ही क्षण में उसने आगे के चार सैनिक धराशायी कर दिये और घोड़े को एड़ मार उनके सिरों के ऊपर से कुदाकर खड्ग की धार से टपकती लहू की बूँदों को देखता हुआ चिल्लाया—समुद्र ! आगे बढ़ !

सैनिकों ने अपने धनुषों पर बाण चढ़ाये। समुद्र के एक बाण लगा। वह हिनहिना कर प्राकार पर चढ़ा और भीमवेग से भागने लगा। न जाने कब तुरंग ने नीचे परिखा में जल देखा कि उसने आगे के पाँव समेट कर ऐसा गोता सा.लगाया कि सौरभेयी के मुख से आश्चर्य की ध्वनि निकली।

आभीरराज गरजा—बंदी कर लो उसे, जाने न दो......

कुछ ही देर बाद शोणकेतु को पकड़ कर सैनिक बंदीगृह की ओर ले चले ! परिखा पार करते समय वह घेर लिया गया। उसे उन्होंने लौह शृंखलाओं से बाँध दिया। फिर भी उस बलिष्ठ केतुकुलीन सौवीर को देख-देखकर सैनिकों को भय होता था। वह कुलीन था और शासन करते-करते उसकी आयु का उद्भट यौवन आया था।

वह चिल्लाया—छोड़ दो मुझे, छोड़ दो मुझे......

किन्तु सैनिक हँस दिये।

आर्य गंधकाल ने दाढ़ी खुजा कर कहा—ह्रीमान ! आर्य ह्रीमान् !

तब तक दुर्गद्वार बंद किया जा चुका था। कुछ प्रजा के लोग मारे गये थे। उनको जलाने का प्रबन्ध हो रहा था। बाकी दुर्ग से निकाल दिये गये थे। पहले जो गणागार था, वहाँ जो अब आभीर सैनिक थे, वे पथों पर फैल गये थे। मदनमंथिनी पलिका पर जा रही थी। सभासद, सुवर्चला और सौरभेयी सब चले गये। आभीरराज विलास भवन में चला गया। ह्रीमान् पास आया। कहाँ—आर्य ?

'क्या देखा ?' गंधकाल ने कहा।

'देव ! वह बड़ा धृष्ठ था !'

उसे काट कर गंधकाल ने कहा—छोड़ो। देश की चिंता मुझे करने दो आर्य ! तुमने उधर भी देखा ?

'हाँ आर्य सौरभेयी की आँखों में...'

'हाँ !'

'कुछ-कुछ......'

'क्यों अटकते हैं आर्य ! कहे न ?'

'आर्य मैं कैसे कहूँ ?'

'जब कुछ कह ही नहीं सकते, तो करेंगे भी क्या ?'

ह्रीमान लज्जित हो गया। गंधकाल ने कहा—वह आभीरराज को भी नहीं चाहती ! उसने आपको कभी देखा ?

'हाँ आर्य ! उसके नेत्रों में......' वह फिर रुक गया।

हँसकर हठात् गंधकाल ने कहा—आर्य नेत्रों में तो यौवन की अतृप्ति है, पर मन में राज्य की भूख है। ऐसा कर सकते हो ?

'क्या आर्य ?' उसने चौंक कर पूछा।

'सोच लें आर्य', गंधकाल ने कहा, 'समय आने पर आपसे ही तो सब कहना होगा।'

ह्रीमान ने चकित होकर कहा—आर्य ! आप बृहस्पति हैं।

× × ×

आभीरराज भुमन्यु को लगा उसे चारों ओर से विपत्तियों ने घेर लिया है। उसे हठात् प्रतिहिंसा ने घेर लिया। वह योद्धा था। उसको यह प्रिय खेल था कि जब वह रणभूमि में शत्रुओं को पराजित करता था तो शत्रु के अधिनायक का नरमुण्ड निकलवा कर उसे सुवर्ण में जड़वा कर, उसमें मदिरा भर कर पीता हुआ, शत्रु सैनिकों और योद्धाओं के नरमुण्डों की मीनार बनवा कर, विधवा शत्रुस्त्रियों को अर्धनग्न करके उनका नृत्य देखकर, अट्टहास करता था और फिर अपने सैनिकों को पराजित ग्राम या नगर में आग लगाने की आज्ञा देकर आनंदित होता था। जलते हुए, भागते हुए लोगों का आर्त्तनाद उसकी मदांध तृष्णा को तृप्त करता था।

सौवीर भूमि को वह बाहुबल से नहीं, छलशक्ति से जीत पाया था और उसका मन क्रूर होने के कारण भटकता था। उसे कुछ विजय का आनन्द ही नहीं आया था। इस समय उसे बृहद्वती का स्मरण हो आया। एक चर ने प्रवेश किया। प्रणाम किया और सूचना दी कि महामात्य भाग गया। कुमार शोणकेतु बंदी हुआ है। उसका रोमरोम जल उठा। वह चर को दो कोड़े मार कर, मदिरा पीकर सीधा बृहद्वती के प्रकोष्ठ की ओर चला गया। उसको देखकर रक्षिकाएँ बाहर चलीं गईं। प्रकोष्ठ अत्यंत मुसज्जित था। किन्तु बृहद्वती इस समय भी सिर के बाल खोले विषण्ण सी बैठी थी। वह किसी ध्यान में मग्न थी। आभीरराज भुमन्यु ने उसको पीछे से छू लिया। वह चौंक उठी। भुमन्यु को देखकर वह भीतर ही भीतर काँप उठी। परन्तु वह सँभल भी न पाई थी कि भुमन्यु ने मदमत्त स्वर में दोनों हाथ खोलकर बढ़ते हुए कहा—आ! विद्युत! आ मेरे ऊपर गिर जा। मैं तेरे यौवन की ज्वाला से भस्म हो जाने को भी तत्पर हूँ।

बृहद्वती खड़ी हो गई। उसने गंभीर स्वर से कहा—नीच! तुझे मेरा धर्म नष्ट करके क्या प्राप्त होगा?

'पुत्र !' भुमन्यु ने कहा और वह शैय्या पर धम से लेट गया। उसने फिर कहा—सुन्दर कुसुम उगे और किसी की नासिका को गंध न दे, तो खिला न खिला समान समझो। जंगल में मोर नाचा! किसने देखा। वह ठठा कर हँसा!

बृहद्वती ने दोनों हाथों से दोनों कान बंद करके कहा—मैं विधवा हूँ। मेरे ऊपर मेरे देवर के अतिरिक्त और किसी का भी अधिकार नहीं है। तुझे मुझसे ऐसी बातें करते हुए तनिक भी लज्जा नहीं आती।

'लज्जा ?' भुमन्यु ने कुहनियाँ शैय्या पर टेक दीं और हथेलियों पर गाल टिका कर कहा—इसमें लज्जा की क्या बात है? कल्पना के दुख वास्तविक दुख नहीं होते सुन्दरी। वह जो पुरुष मर गया है, उसको रोने से क्या तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा? नहीं। तुम्हारे ब्राह्मणों में पहले नियोग नहीं होता था?

बृहद्वती ने कहा—समय अपनी मर्यादा बाँधता है। जो उसका अतिक्रमण करता है, वह धर्म का विरोध करता है।

'धर्म !' भुमन्यु ने मुस्करा कर कहा, 'आनन्द है। आभीर गोपाल हैं सुन्दरी! यादवियों ने उन्हें जन्म दिया है। मथुरा के गोप उनके सम्बन्धी हैं। हम वासुदेव के उपासक हैं। हमारे धर्म में स्त्री का कार्य और धर्म पुरुष की संतान को जन्म देना है।' फिर उसने स्वर बदलकर कहा—तुम मूर्खा हो। आभीर सौवीरों के शत्रु नहीं हैं। हम तुम्हारी भूमि में निमंत्रण प्राप्त करके आये हैं। हम आक्रमणकारी नहीं हैं। तुम्हें चाहिये कि हम परस्पर ऐक्य धारण करें। सुन्दरी! तुम्हारी यह जंघाएँ, यह पुष्ट स्तन, यह मांसल देह सचमुच आभीर तरुणियों की सी है। तुम तो मूर्खा हो, मूर्खा!

वह लेटकर फिर हँसने लगा।

बगल के प्रकोष्ठ में गंधकाल ने सिर हिला कर आर्य ह्रीमान की ओर देखा।

'आर्य !' ह्रीमान ने कहा, 'आभीर चतुरता दिखा रहा है। अब तो वह आगे बढ़ रहा है।'

'बढ़ने दो आर्य !' गंधकाल ने कहा, 'इस स्त्री का अभिमान खण्डित होना ही चाहिये।'

ह्रीमान थर्रा गया। उसने कहा—किंतु आर्य। यदि सौवीर प्रजा ने सुना कि एक ब्राह्मणी विधवा से आभीर ने बलात्कार किया तो क्या कोई उसके क्रोध को झेल सकेगा ? और फिर प्रजा हमें क्या नीच नहीं समझेगी ?

आर्य गंधकाल ने सिर हिलाया। कहा—ठीक कहते हैं आर्य ! ऐसा काम करना चाहिये कि सर्प भी मरे, दण्ड भी खंडित न हो। एक काम करें। उसने कान के पास मुख ले जाकर कहा—तुम जाकर सौरभेयी को बुला लाओ। उससे बृहद्वती भी तुमसे प्रसन्न हो उठेगी और सौरभेयी······

बात समाप्त होने के पूर्व ही आर्य ह्रीमान चला गया। आभीरराज भुमन्यु इस समय क्रुद्ध होकर बढ़ रहा था। उसके नेत्रों में क्रुद्ध वासना थी। वह सर्प की सी वासना थी, जो सर्पिणी को बाँध-बाँध लेना चाहती है, फूत्कार कर उठती है। बृहद्वती भय से पीछे हटती जा रही थी। दोनों एक दूसरे की ओर घूर रहे थे। वह बलिष्ठ पुरुष भी स्त्री की पवित्र आत्मा के तेज को देखकर ठिठक सा गया था, क्योंकि उनमें एक निर्भयता थी, आत्मा को चुनौती देने वाला गौरव था। वह आर्त्त तो थी किंतु उसका सत्य उसको अखण्ड शक्ति दिये खड़ा था।

गंधकाल ने आश्चर्य से द्वारसंधि में से झाँक कर देखा कि आभीर-राज व्याघ्र की भाँति झपटना चाहता है किंतु सामने के दीनपशु की आँखों की शक्ति ने उसे जैसे जकड़ लिया है, वह अपनी हिंस्र क्रूरता को उस सर्वोपरि मानवीय चेतना के संमुख नमित सा देख रहा है।

आभीरराज ने क्रोध से घुटते हुए स्वर में कहा—किसका अभिमान

है तुझे ? तेरा पिता बचकर भाग निकला है रसका ? किन्तु उसके स्थान पर मैंने वह्निकेतु के पुत्र शोणकेतु को वंदी बना लिया है।

बृहद्वती के नेत्रों की चमक रुक गई। वह जैसे चिंता में पड़ गई। उस क्षण आभीरराज भुमन्यु ने हँस कर कहा—मैं तुझे पट्टमहिषी बना दूँगा। सौरभेयी, मदनमंथिनी, सुवर्चला, इनमें से किसी का भी यौवन तेरा जैसा स्निग्ध मैंने नहीं देखा, रूपसी ! तेरे नेत्र क्या हैं कि देखता हूँ तो मन करता है, इन्हें देखता रहूँ। जब तू मेरी ओर देखती है तो मुझे लगता है कि मेरे हृदय पर वर्बर कशाघात हो रहा है। और फिर वह कठोर हास्य से प्रकोष्ठ को प्रतिध्वनित करने लगा। गंधकाल के नेत्र चुंधिया गये। बाहर रक्षिकाएँ भी चौंक उठीं।

बृहद्वती ने रोते हुए कहा—तुम मेरे पिता के समान हो, मेरी रक्षा करो !

आभीरराज भुमन्यु सीधा खड़ा हो गया। उसने कहा—ए ए ! मैं क्या युवक नहीं हूँ ? तेरा पिता वृद्ध है। देख······ कह कर उसने अपनी भुजा की दृढ़ मांसपेशियों को फुलाया और कहा—देख लौह है लौह ! मेरे खड्ग से दिशांतों तक जनपद काँपते हैं, और तू मुझे ठुकरा रही है ?

इस समय पट्टमहिषी सौरभेयी ने प्रवेश किया। वह चुपचाप आकर आभीरराज भुमन्यु के पीछे खड़ी हो गई। वह स्यात् शीघ्रता में आई थी क्योंकि उसके वक्ष पर कंचुक नहीं था। केवल कंधों पर एक कौषेय पड़ा था जिसके झीनेपन में से उसके पीनोन्नत स्तन साँस के साथ उठते और बैठते दिखाई पड़ते थे। उसकी भृकुटियों पर बल था, जैसे उसे अत्यंत क्रोध था। आभीरराज भुमन्यु को ज्ञात नहीं हुआ। वह कहता गया—मैं तुझे पट्टमहिषी बना दूँगा सुन्दरी ! अपनी स्त्रियों को तेरी दासी बना दूँगा······

बृहद्वती ने स्त्री को देखा तो चिल्लायी—देवी !

वह नहीं जानती थी कि वह कौन थी। किंतु उसका गर्वमय मुख देखकर लगा कि यह कोई प्रभुवर्ग की ही स्त्री है।

आभीरराज भुमन्यु ने मुड़कर देखा। आश्चर्य ने क्रोध को बढ़ाया। उसने कहा—पट्टमहिषी ! तुम यहाँ क्यों आई हो ?

सौरभेयी ने दोनों हाथ उठाकर अँगड़ाई सी ली और व्यंग्य से मुस्करा कर सिर के पीछे दोनों हथेलियों को बाँधकर .कहा—नई पट्टमहिषी की सेवा करने। दासी बनने वाली हूँ न ?

सौरभेयी के नेत्रों में विष था। उसका इस प्रकार खड़ा होना महत्वहीन नहीं था। उसका कौषेय उठ गया था और उसके भुजमूलों के कोमल रोम, उसका वक्ष, उदर प्रदेश सब खुल गया था। वह जैसे अपने वक्ष के नखक्षतों को इस प्रकार भुमन्यु को दिखाकर उसे अपनी पुरानी प्रीति का स्मरण दिला रही थी।

भुमन्यु ने कठोर स्वर से कहा—सौरभेयी !

महिषी ने सीधे खड़े होकर कहा—नहीं आभीरराज पट्टमहिषी कहें। परस्त्री मेरा स्थान नहीं ले सकेगी और वह भी विजातीय ?

भुमन्यु के मुँह पर चाँटा सा बजा। कहा—तुम सीमा का उल्लंघन कर रही हो !

सौरभेयी हँसी। कहा—मैं पार्वत्य प्रदेश के मद्र विजयी मण्डलेश्वर आभीरराज पाशिवाट की पुत्री हूँ। जो कुछ आप हैं, वह मेरे कारण !

आभीरराज क्रोध से तिलमिला गया। उसे लगा वह उसकी हत्या कर देगा। वह बढ़ा, फिर रुक गया। फिर तीव्र गति से चला गया। उसको जाते देख बृहद्वती को लगा कि वह किसी महत्त्वपूर्ण शक्ति के सामने खड़ी है, जिसके सामने आभीरराज भुमन्यु भी खड़ा नहीं रह सका। उसने झुक कर कहा—देवी ! आप मेरी माता के समान हैं।

सौरभेयी ने कहा—विवाहित हो ?

बृहद्वती ने सिर झुका कर कहा—देवी ! ब्रह्मा ने मेरा सौभाग्य छीन

लिया। यह कहते हुए उसकी आँखें भर आईं। वह विधवा है, यह सोचते हुए उसे लग रहा था जैसे यह उसका कोई जघन्य पाप है। अतः वह चुप हो गई।

'अच्छा! विधवा है,' सुहागिनी ने कचोट मारी। स्त्री को यह गर्व उसी पुरुष पर था जो अभी-अभी उससे लड़ कर चला गया था।

बृहद्वती ने उत्तर नहीं दिया। द्वार पर एक व्यक्ति दिखाई दिया। वह आर्य ह्रीमान था। उसने धीरे से बढ़ कर कहा—पट्टमहिषी! आपने सम्मान की रक्षा कर ली।

सौरभेयी ने ह्रीमान की ओर इंगित करके बृहद्वती से कहा—इस आर्य ने तुम्हारी रक्षा की है। 'आर्य!' उसने मुड़कर ह्रीमान से कहा, 'इस स्त्री को छोड़ दो!'

ह्रीमान ने काँपकर कहा—देवी! शत्रु की दुहिता है। फिर आभीरराज भुमन्यु को यदि यह ज्ञात हो गया कि मैंने इसको मुक्त कर दिया तो देवी······। उसने हथेली आड़ी करके अपनी ग्रीवा पर चलाकर इंगित किया मानो वह आभीरराज गर्दन कटवा देगा।

'इसकी रक्षा पर मैं तुम्हें नियत करती हूँ,' सौरभेयी ने कहा। और वह द्वार की ओर बढ़ी।

ह्रीमान ने उसके पीछे चलते हुए कहा—सब ठीक हो जायेगा पट्ट-महिषी! किंतु आभीरराज अत्यन्त क्रुद्ध हो गये हैं।

'किसलिये?' सौरभेयी ने मुड़ कर पूछा। उसने द्वार के काष्ठ पर हाथ उठाकर रखा, स्कंध टेक कर खड़ी हो गई।

'देवी!' आर्य ह्रीमान ने विनय के बहाने शीश झुका लिया, क्योंकि वह अब उसकी त्रिवलि और नाभि प्रदेश के रोम देख कर भीतर ही भीतर व्याकुल होने लगा था। उसके भीतर आभीर स्त्रियों के प्रति एक प्रतिहिंसा थी। वह स्वतन्त्र था तब ऐसी पच्चीस स्त्रियाँ पकड़ सकता था। अब परतन्त्रता में यह असम्भव था। यही कचोटता था। यदि आभीर स्त्रियाँ

भी प्राप्य होतीं तो इस समय और क्या दुख था। किंतु वे विजयिनी थीं और सौवीर पुरुषों को नीची दृष्टि से देखती थीं। उनकी यह उपेक्षा ह्रीमान को कचोटती थी। इस कचोट के बाह्य अधिकरण जो जातीयतावाद का आडम्बर लिये थे, वे सब मूलपिपासा के उपकरण मदोद्धत वासना और स्त्री तृष्णा के पर्याय थे, या कहें कि उसे अपनी कोमलकान्ति में छिपाना चाहते थे, जैसे अपनी नग्न बर्बरता को देखने की स्वयं आर्य ह्रीमान में भी शक्ति नहीं थी। वह भी आवरण चाहता था।

सौरभेयी की कुशल आँखों ने पुरुष को पहिचाना। वह समझ गई। उसने कहा—आर्य ! सब ठीक हो जायेगा। और उस पर अज्ञान के ढंग से कटाक्ष किया।

वह बढ़ी। ह्रीमान ने कहा—देवी !

'क्या ?'

'यदि आभीरराज को ज्ञात हो गया कि मैं रक्षा पर नियुक्त किया गया हूँ, और वे मुझे बुलायें तो ?'

'तो', सौरभेयी ने आँखें मिला कर कहा, 'मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके, आप चले जायँगे आर्य ?'

यह आज्ञा थी, या स्त्री की मोहिनी, या याचना यह आर्य ह्रीमान के स्वर्गीय पिता भी समझने में असमर्थ रहते। किंतु बृहद्वती समझ गई। वह स्त्री ही जो थी। परन्तु उसे बोलने का अधिकार ही क्या था ?

ह्रीमान ने देखा—नहीं देवी ! जब तक आप आज्ञा नहीं देंगी ह्रीमान यहाँ से नहीं हटेगा।

सौरभेयी हँसकर चली गई। ह्रीमान की लम्बी साँस बृहद्वती ने भी सुनी।

× × ×

आर्य गंधकाल उस समय घर पर चतुरंग खेल रहे थे जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी बड़ी पुरानी चाल खेल का आनन्द दिखा गई।

तुरन्त उठे। उन्होंने हर्ष के कारण सामने खड़ी अर्धवयस्क दासी को आलिंगन में बाँध लिया। दासी ने कहा—आर्य! क्या करते हैं।

'ओह हो,' आर्य गंधकाल ने कहा, 'यह अनुचित हुआ, यह अनुचित हुआ। तुम ह्रीमान तो नहीं हो। तुम ह्रीमान तो नहीं हो।'

जिस समय वह प्रासाद में पहुँचा आभीरराज बैठा कुछ सोच रहा था। गंधकाल ने कहा—प्रभु!

आभीरराज ने सिर उठा कर देखा। कहा कुछ नहीं। नेत्रों से इंगित किया। गंधकाल बैठ गया।

'महाराज चिंतित हैं?' उसने कहा।

आभीरराज उसे एकटक देखता रहा। परन्तु आज की घटना उसे व्यथित भी कर रही थी और वह कहना भी चाहता था। अंत में उसने कहा—आर्य गंधकाल! आपके सौवीरों में स्त्री इतने बंधन क्यों मानती है? हमारे आभीरों की स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं। जब हमारे आभीरों में पतिपक्ष का कोई अतिथि आता है तो गृहस्थी उसका हर प्रकार से मनोरंजन करती है। यहाँ स्त्री और पुरुष के सहज सम्बन्ध को इतना महत्व देकर कलुषित क्यों माना जाता है?

गंधकाल ने कहा—प्रभु! मैं एक बार हिमालयस्थ प्रदेशों में गया था वहाँ भी यही पद्धति है। उत्तर के वाल्हीकों, मद्रों, सौवीरों, और अंवष्ठों में पहले यही रीति थी। किंतु मगध, कुरुपंचाल के प्रभाव से अब स्त्री प्रत्येक आर्य गण में भी एक पतिव्रत ही रखती है। आर्य शुचक दाक्षिणात्य गये थे। वे कहते थे वहाँ स्त्रियों का ही समुद्रतीर पर राज्य है। यह तो देश-देश के नियम की बात है। आप इतने विचलित क्यों हैं प्रभु! सब उचित ही होगा।

उसकी मधुरवाणी ने आभीरराज का दहकता हृदय कुछ शान्त हुआ। उसने फिर कहा—क्या होगा गंधकाल! क्या होगा?

'आप उद्विग्न हैं देव,' गंधकाल ने कहा।

'मैं उद्विग्न हूँ ?' आभीरराज ने कहा, 'मैंने अपने खड्ग के बल से प्रत्येक देश को जीता है। तुम्हारे देश की स्त्री और मेरे सामने सिर उठाये ?'

उसकी ललकार सुनकर गंधकाल ने उसे ऐसे देखा जैसे वह एक हठी बालक को देख रहा था। उसने नम्रता से कहा—देव! यही परंपरा है।

आभीरराज ने कहा—परंपरा! तुम सब कायर हो।

गंधकाल चुपचाप सोचता रहा। उसके सामने तो संतुलन की बात थी। वह सबको सम रखना चाहता था। कहा—देव! उसे बलपूर्वक परास्त करें।

'वह नहीं हो सकता', आभीरराज ने पराजित स्वर में कहा, 'सौरमेयी जान गई है।'

गंधकाल ने व्यंग्य नहीं किया। चुप रहा। फिर कहा—इस स्त्री का अभिमान चूर-चूर करने की मैंने एक दूसरी ही रीति सोची है।

'वह क्या आर्य ?'

'आप जानते हैं यह विधवा है ?'

आभीरराज हतोत्साह हुआ। कहा—हाँ।

'कुमार शोणकेतु बंदी हो गया है,' उसने कहा। आभीरराज समझा नहीं। कहा—तो!

'वही तो कहता हूँ', गंधकाल ने दाढ़ी खुजा कर कहा, 'समय अनुकूल है।'

'अर्थात्!' आभीरराज ने व्याकुलता से किन्तु आशा भरे स्वर से पूछा।

'यदि वृषकेतु को भी इस समय बंदी बना लिया जाये ?'

वह उठकर घूमने लगा, जैसे गंभीर चिंता में था। आभीरराज ने

उसे जिज्ञासा से देखा। हठात् गंधकाल ने मुड़कर कहा—आभीरराज ! मैं प्रश्न करता हूँ।

'ऐं !' आभीराज को लगा वह धृष्ठ था।

'पूछता हूँ प्रभु !' गंधकाल ने कहा. 'आप दोनों केतु कुमारों को बंदी बनाना बड़ा काम समझते हैं कि बृहद्रती को हराना ? आप महाराज हैं। राजा महत्त्वपूर्ण है कि एक स्त्री ?'

आभीरराज ने कहा—राज्य की जगह राज्य है, स्त्री के स्थान पर स्त्री। स्त्री का अभिमान मेरे पौरुष की अवहेलना है। एक युवती स्त्री को यह कहने का अधिकार ही क्या है कि वह मेरे साथ शैय्यागामिनी नहीं हो सकती। कौन सा ऐसा पुरुष है जो मेरे अतिरिक्त, उसके योग्य हो सकता है ?

गंधकाल ने कहा—दोनों कार्य हो सकते हैं, किन्तु उसके लिये चातुर्य की आवश्यकता है। और वह आपमें है। 'वह आपमें मुझसे कहीं अधिक है,' गंधकाल ने स्वर उठा कर कहा, 'महाराज आपको चिंता करने की आवश्यकता नहीं, विचार करने की आवश्यकता है।'

गंधकाल बैठ गया। आभीरराज ने ताली बजाई। एक दासी ने प्रवेश किया।

'देव !' उसने झुक कर कहा।

आभीरराज ने इंगित किया। वह चली गई। गंधकाल समझ गया कि आभीरराज ने बुद्धि को कुशाग्र बनाने को क्या मँगाया है ! वह मुस्कराया। दासी मदिरापात्र ले आई। आभीरराज चषक में भर-भर कर पीने लगा।

'क्या सोच रहे हैं आर्य ?' उसने तीन चषक पीकर कहा।

'देव ! समस्या सुलझ गई।'

'कैसे ?'

'आप तो समझ ही गये होंगे।'

इस प्रशंसा से वह मद में झूमता हुआ शीश अब सनसनाने लगा। उसने कहा—मैं समझा तो नहीं हूँ, परन्तु मुझे कुछ आभास सा हो गया है।

गंधकाल मुस्कराया। वह जानता था आभीरराज कुछ नहीं समझा है। आत्मश्लाघा में झूठ बोल रहा है क्योंकि उसके सामने बुद्धिमान होने के आत्मसम्मान का प्रश्न आ गया है। गंधकाल ने कहा—मैं जानता था कि आभीरराज भुमन्यु यदि इतने कुशल राजनीतिज्ञ नहीं होते तो वे कभी सौवीर विजेता नहीं होते। तो लिख दीजिये न प्रभु!

'हाँ जल्दी लिखाओ,' आभीरराज ने चषक में मदिरा उँडेलवाते हुए कहा। दासी को गंधकाल ने इंगित किया। वह गई। लौटी तो उसके साथ लेखक स्विष्टकृत् था। वह बैठ गया और केशाय को फैला कर पंख की कलम से लिखने लगा।

'देव! आज्ञा......' गंधकाल ने कहा।

'तुम्हीं बोल दो', आभीरराज ने पूरा चषक गट-गट करके पीते हुए कहा।

गंधकाल बोलने लगा। स्विष्टकृत् चौंका। गंधकाल ने डाँटा—शीघ्रता करो लेखक।

जब वह लिख चुका तो मुद्रा निकाल कर आभीरराज ने कहा—लाओ गंधकाल! तुम जैसे स्वामिभक्त हो, यह मुझसे छिपा नहीं है।

उसका मन चंचल था। लेखक मुद्रा लगवा कर चला गया। गंधकाल ने पत्र ले लिया और कहा—तो प्रभु भेजवा दूँ?

आभीरराज ने कहा—इसका अर्थ?

गंधकाल ने कहा—सब सम्मुख आ जायगा आभीरराज! आप क्यों सब कुछ समझ कर भी पूछ रहे हैं?

'अच्छा जाओ,' आभीरराज ने कहा। गंधकाल द्वार के बाहर भी

नहीं गया था कि भुमन्यु ने दासी को पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया और मदविह्वल स्वर से कहा—वृहद्वती!

गंधकाल ने द्वार पर से सुना और मन में कहा—मूर्ख! वह आलिंद पार करके जब सोपानों पर से उतर रहा था तो चर क्रौष्टेय वृजिनीवान् को आते देखा। उसने इंगित किया।

चर ने कहा—देव! मैंने पुरस्कार प्राप्त करने का कार्य किया है।

'क्या?' गंधकाल ने निर्विकार स्वर में कहा।

'मैंने यह पता लगा लिया है कि महामात्य प्रावृट और महिषी महावन में कहाँ छिपे हैं।'

'तुम वहाँ कब पहुँच गये?'

'देव नीवारक के पीछे जो गिरिखंड है वे उसके पीछे हैं।'

'मुझे क्या बताता है मूर्ख!'

'प्रभु! जानते थे?'

'अच्छा!' व्यंग्य से गंधकाल ने देखा, जैसे तू क्या अपने को बड़ा चतुर समझता था। चर लज्जित हो गया। कहा—अपराध क्षमा करें देव!

'नहीं क्रौष्टेय वृजिनीवान्। मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। ले।' उसने मोती का हार उतार कर दिया, 'मैं तेरे परिश्रम से संतुष्ट हुआ। मैं जानता था क्या इसी से तेरा खोज लेना भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। आज एक काम कर।'

'आज्ञा प्रभु!' वह मुक्ताहार पाकर गद्गद हो रहा था। गंधकाल ने पत्र तो लिखा लिया था, परन्तु कहाँ भिजवाये यह उसके सामने घोर समस्या थी। परन्तु यह भी हल हो गई। अवश्य भाग्य अनुकूल है। श्रमण वाटधान का प्रताप है। परन्तु अपने कौशल से वह चर को भी अपना अनुचर बना गया।

'देख !' गंधकाल ने रेशमी पुलिंदा देकर कहा, 'यह पत्र आज ही महामात्य या महिषी के पास पहुँचा दे।'

'जो आज्ञा देव ! मै अश्व पर चला जाता हूँ।'

'नहीं ! मूर्ख ! राजाज्ञा लेकर तुरंग पर नहीं जाते। तू पीलुक पालेय के पास जा। और गजारूढ़ होकर जा। समझा ?'

'जो आज्ञा स्वामी !'

चर चला गया। गंधकाल ने उसे फिर बुलवाया। कहा—जानता है यह सब गुप्त है।

'हाँ देव ! मृत्यु भी इस रहस्य को नहीं खुलवा सकेगी।'

'नहीं मूर्ख ! मृत्यु के भय से कह देना ही इस रहस्य का मूल है।'

'प्रभु !!' चर ने आश्चर्य से कहा।

'हाँ चर ! ऐसा कर कि रहस्य लगते हुए भी संवाद प्रजा में फैल जाये। और सुन।' चर पास आ गया। गंधकाल धीरे-धीरे कुछ समझाने लगा।

'देव ऐसा ही होगा,' चर ने कहा। अब कुछ उसकी समझ में आने लगा था।

'किन्तु', गंधकाल ने कहा, 'प्रजा को इस संवाद पर पूर्ण विश्वास भी नहीं होना चाहिये। जा ! देख क्या रहा है !'

चर चला गया। गंधकाल ने प्रासाद में घुस कर कुछ प्रकोष्ठ पार किये। ठीक इसी प्रकोष्ठ के ऊपर के प्रकोष्ठ में इस समय आभीरराज था। गंधकाल ने सुना। ऊपर आभीरराज हँस रहा था और दासी के आभूषण बज रहे थे।

गंधकाल ने दाढ़ी पर हाथ फेरा और लौट पड़ा।

× × ×

स्वर्णास्तरण से ढँका भीमगज जब महावन में पहुँचा वृक्ष पर से

आखेटक पुलिंद कुक्कुट ने तूर्य बजाया। उसका स्वर सुनकर वृषकेतु, अपने नये स्वास्थ्य के आवेश में तुरंग पर चढ़ गया। महामात्य और सनगा, तथा अन्य दास सन्नद्ध हो गये। महामात्य जब अश्व पर चढ़ा तथा सनगा भी चढ़ी, तो वृषकेतु ने हाथ बढ़ाया। एक दास ने लम्बा भल्ल उसके हाथ में दे दिया। आखेटक और अनुचर इधर-उधर से बढ़ चले। वृषकेतु, सनगा और महामात्य अश्वों को बढ़ा कर आगे चल पड़े।

गण को पथ पर रोक लिया गया।

'उतर आओ,' वृषकेतु ने भल्ल उठा कर गज के मस्तक पर उसकी नोंक रख दी।

क्रौष्टेय वृजिनीवान् ने उतर कर अभिवादन किया। वृषकेतु कौतूहल से देखता रहा। चर ने उड़ती दृष्टि से सनगा और महामात्य को भी देखा और बिना कुछ कहे, पत्र वृषकेतु की ओर बढ़ा दिया। वृषकेतु ने पढ़ा और उसके मुख पर आश्चर्य की रेखा दिखाई दी।

'क्या है?' महामात्य ने कहा।

'पितृव्य! आभीर का पत्र है।'

'पत्र! आभीर का?' वृद्ध ने विस्मय से कहा। 'क्या लिखा है?'

'देव उस ओर चलें,' वृषकेतु ने अश्व बढ़ाया। सनगा और महामात्य भी घोड़ा बढ़ा कर उसके पास चले गये।

वृषकेतु ने कहा—उसने लिखा है......

'पढ़ो कुमार, महामात्य ने कहा, 'तो आभीर को हमारे स्थान का ज्ञान हो गया?' उसके मुख पर चिंता आ गई।

वृषकेतु पढ़ने लगा।

'आभीरराज भुमन्यु......'

'वह सब छोड़ो। तथ्य की बात पढ़ो', महामात्य ने कहा। वृषकेतु ने सुनाया—कुमार शोणकेतु हमारे अतिथि हैं। महामात्य के शौर्य ने

हमारा हृदय जीत लिया है। हम जानते हैं कि आप सौवीर भूमि के प्रेमी हैं। हम आपसे मित्रता करना चाहते हैं। आपके सौवीरों के निमंत्रण पर ही हमने यहाँ आकर कष्ट उठाया है। हम चाहते हैं आपका हमसे निकट का सम्बन्ध हो। हमने यह निश्चय किया है कि एक आभीर कुलीन कन्या से आपका परिणय हो। आप पढ़ कर अविश्वास करेंगे, किन्तु वीर संदेह नहीं करते क्योंकि वे कायर नहीं होते। सौवीर भूमि सौवीरों की है। आपसे सम्बन्ध स्थापित करके हम सन्धि करना चाहते हैं। आशा है, आप अपने मित्रों के साथ परिणय करने आयेंगे। यदि आप नहीं आयेंगे तो हम समझेंगे कि अन्य सौवीर भूस्वामियों की भाँति आप भी कायर हैं।

वृषकेतु रुक गया।

'यह तो समझ में नहीं आया', सनगा ने कहा।

'यह कोई नई चाल है', महामात्य ने सिर हिलाया, 'शत्रु की प्रत्येक बात पर ध्यान देना चाहिये।'

'नहीं पितृव्य', वृषकेतु ने कहा, 'आपके छूट जाने से वे भयभीत हो गये हैं। यदि यह चाल होती तो वह पत्र क्यों भेजता। चुपचाप सेना भेजकर हमें बंदी नहीं बना लेता?'

वृषकेतु की बात में तथ्य था। जब वह छिपने का स्थान ही जान गया था तो ऐसा करना क्या कठिन था? वृषकेतु ने फिर कहा—इसमें आश्चर्य ही क्या है पितृव्य? चर!

क्रौष्टेय आगे आया।

'कुमार शोण कहाँ हैं?' सनगा ने पूछा।

'देवी! वे प्रासाद में हैं', चर ने सिर झुका कर कहा।

'और बृहद्वती?'

'देवी वे पट्टमहिषी सौरमेयी के पास हैं।'

सनगा ने वृषकेतु को देखा। महामात्य का सिर झुका हुआ था। सनगा ने कहा—कुमार शोण का ही परिणय क्यों नहीं किया ?

'देवी ! वे अग्रज का परिणय पहले चाहते हैं।'

'अच्छा चर !' वृषकेतु ने कहा, 'तुम जाओ।'

'देव एक बात और है,' चर ने धीरे से कहा, 'आर्य गन्धकाल ने आभीरराज को मिटा देने का चक्र रचा है। यदि आप इस समय नहीं आयेंगे तो सौवीरों की मुक्ति कभी नहीं होगी। आर्य गन्धकाल के ही कारण आर्य महामात्य के प्राण बच गये थे। उन्होंने ही प्रासाद सभा और दुर्गद्वार, सैन्य हटा कर, खुलवाये थे और प्रजा को भीतर बुलवाया था कि कोई महामात्य को छुड़ा ले। आर्य उनका हृदय भीतर ही भीतर घुला जा रहा है। वे रात-दिन प्रायश्चित्त सा कर रहे हैं।'

उसकी एक-एक बात सप्राण थी। तर्क थे।

'हम आयेंगे,' वृषकेतु ने कहा।

चर ने कहा—देव ! क्या मैं समझूँ कि आर्य ने परिणय का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है ?

महामात्य ने कहा—चर ! सोच कर उत्तर दिया जायेगा।

'महामात्य !' चर ने कहा, 'आपको कौन नहीं जानता ! समय अनुकूल हो रहा है, यदि आभीर कन्या से सम्बन्ध ही हो जाये तो......'

'तुम सेवक हो,' सनगा ने कहा, 'तुम्हें मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।'

'देवी ! ठीक कहती हैं,' क्रौष्टेय ने काट कर कहा, 'किन्तु मैं सौवीर हूँ। मेरा भी इस भूमि से उतना ही सम्बन्ध है जितना आपका। आपको सुयोग प्राप्त हो रहा है। प्रजा उत्पीडित हो रही है। यहाँ वन में कौन सा उद्धार हो रहा है ?'

यह सनगा के मन की बात थी। चुप हो रही।

चर ने मुड़ कर कहा—रुद्र कल्याण करें। आज्ञा दें। वह दो पग चला और उसने मुस्करा कर कहा—आर्य ! सौवीर दास हैं तो उचित ही है। जो अपनी रक्षा करने में असमर्थ होते हैं उन्हें स्वतंत्रता का करना भी क्या है ?

बात चुभ गई। गज चला गया। उसकी घंटाध्वनि धीरे-धीरे पर्वत पथ में गूँजती हुई मिट गई।

वृषकेतु ने कहा—महामात्य !

आज पितृव्य नहीं कहा, महामात्य कहा, सुनकर प्रावृट को आश्चर्य हुआ। कहा—वत्स !

'वह मुझे भीरु कह गया है', वृषकेतु ने आवेश से कहा।

'नादान न बनो कुमार,' वृद्ध ने कहा, 'गन्धकाल सर्प से भी अधिक भयानक है। आभीर पशु है। सौवीर भूस्वामियों ने अपने स्वार्थ के लिये उसे बुलाया है। तुम्हारे हृदय को आवेश ने पराजित कर दिया है। किन्तु विद्रोह को सफल बनाने के लिए ठंडे रक्त की आवश्यकता है। जो समय से पूर्व ही सिर उठा देता है, वह अपनी वीरता भले ही दिखा ले, किन्तु लक्ष्य की प्राप्ति नहीं करता।'

'आप,' वृषकेतु ने कहा, 'बढ़ते हुए प्रभञ्जन को रोक रहे हैं। सौवीरों में उत्साह है। वे बढ़ रहे हैं। आभीर डर गया है।'

'मैं क्या कर रहा हूँ,' वृद्ध ने कहा, 'यह सौवीरों से जाकर पूछो। जब सचमुच प्रभंजन आयेगा तब आभीरराज स्वयमेव उड़ जायेगा। उसे कोई भी नहीं रोक सकेगा।'

'अरे ! तुम सब यहाँ हो ?' पट्टमहिषी पैदल आती हुई कह रही थीं। साथ में ओघवती और सुमल्लिक था, 'मैं कब से प्रतीक्षा कर रही थी ?'

तीनों घोड़ों से उतर गये। सनगा ने सब सुनाया। महिषी ने आश्चर्य से देखा। फिर कहा—वह मेरे शोणकेतु के खड्ग से डर गया है महामात्य। यह निश्चित है।

'पट्टमहिषी !' वृद्ध ने टोका।

'यह मैं जानती हूँ', महिषी ने कहा, 'शोण में प्रचण्ड बल है।'

सनगा की आँखें चमक उठीं। उसका वक्ष कुछ गर्व से फूल उठा।

महिषी कहने लगीं—तो आभीर डर गया ? वे हँसी—अरे देखा नहीं था न उसने केतुकुल का खड्ग ?

'अम्ब ! मैं जाऊँगा', वृषकेतु ने कहा। किन्तु स्वर था पूछने का ?

महिषी ने कहा—रे जड़ ! क्षत्रिय पुत्र ! और सो भी केतुकुल में होकर कन्या हरण करने को माता की आज्ञा ले रहा है ? रहने दे। आ, आजा मेरी गोद में बैठ जा। धिक्कार है तुझे ! जिस समय तेरे पिता ने मुझे हरण किया था उस समय सात हाथियों ने उनके तुरंग को घेर लिया था। तब वे उछल कर एक पर चढ़े। पीलुक के सिर पर खड्ग रख दिया और फिर युद्ध करके छः महारथियों को पराजित करके वे मुझे लाये थे। जब मैं प्रासाद में पहुँची थी तो तेरी पितामही ने मेरी उँगली काट कर रक्त गिरा कर उस पर तेरे पिता की उँगली काट कर उनका रक्त गिरा कर कहा था कि शैखावत्या ! आज से यह रक्त तेरा कुल है, तेरा केतन है। वृषकेतु ! तू स्त्रियों की सी बात कर रहा है ? क्षत्रिय होकर तू निमंत्रण अस्वीकार कैसे करेगा ?

महामंत्री स्तब्ध हो गया। महिषी ने फिर कहा—क्यों तू डर रहा है ?

सनगा ने देखा वृषकेतु ने माता के चरणों की धूलि सिर पर चढ़ा ली और कहा—अम्ब ! आशीश दे।

'पुत्र ! विजयी हो', माता ने सिर पर हाथ धर कर कहा और स्नेह से उनके नेत्रों में आँसू आ गये। वृषकेतु उठ खड़ा हुआ।

सनगा ने कहा—मुझे विश्वास नहीं होता कि उन्होंने··कुमार शोण को प्रासाद में रखा है।

महिषी ने व्यंग्य से देखा। सनगा स्त्री की वह दृष्टि समझ गई। उसने मुँह फेर कर कहा—आभीर कोई चक्र चला रहा है।

'अच्छा तो,' महिषी ने कहा, 'तू कल की लड़की। तुझे शोण की इतनी चिन्ता क्यों ?'

सनगा का मुख लाल हो गया। बोली— वे बन्दी हैं।

महिषी ने फिर घूरा। सनगा ने कहा—क्यों ? मुझे पूछने का अधिकार नहीं है !

'है पुत्री ! है !' महिषी की मुस्कराहट छिपी नहीं।

'मैं भी जाऊँगी महानगर,' सनगा ने कहा।

महामात्य ने आश्चर्य से पूछा—तू जायेगी ?

'क्यों नहीं जा सकती ?' सनगा ने कहा, 'वे क्या मुझे पकड़ लेंगे ? मैं जाऊँगी।'

'तू मूर्खा है सनगा,' वृद्ध ने कहा।

'मैं जाऊँगी अम्ब !' सनगा ने करुण दृष्टि से महिषी को देख कर कहा।

महिषी ने कहा—जाने वाले जाते ही हैं कुमारी !

'मेरे साथ कौन चलेगा ?' वृषकेतु ने कहा।

'तुम्हारे साथ ?', महामात्य ने कहा, 'कल सौवीर प्रजा जायेगी।'

बात समाप्त हो गई।

जब वृषकेतु अश्व पर चला, उसके पीछे एक दास था, जो साथ-साथ भागता जाता था। उसके चले जाने पर कुछ देर बाद वृद्ध ने पुकारा—सनगा !

कोई उत्तर नहीं आया। उसे संदेह हुआ। उसने आश्रम में जाकर देखा। चावलों को लेकर उनसे अक्षर बना कर भूमि पर लिखा था—मैं महानगर जाती हूँ।

वृद्ध क्षण भर सोचता रहा। फिर उसने आकाश की ओर दोनों भुजाएँ उठा दीं और कुछ मन ही मन कहा। उसका मन उद्विग्न था। बाहर वायु शीतल हो गई थी क्योंकि अब सूर्य डूबने लगा था।

तभी पट्टमहिषी ने पुकारा—महामात्य !

वे सामने आ गई थीं।

'सनगा कहाँ है ?'

'वह महानगर चली गई।'

'क्यों ?'

'नहीं जानता।'

महिषी ने छिपी दृष्टि से देखा। ब्राह्मण के मुख पर चिन्ता की कालिमा थी। महिषी के मन में पालिता पुत्री के प्रति यह चिन्ता देख कर एक प्रतिहिंसा सी उठी। पर दबा गईं। वे लौट गईं। वृद्ध महामात्य आतुरता से घूमता रहा।

रात को जब ओघवती आई, महिषी ने पूछा—शोण और सनगा में लड़ाई थी न ?

'हाँ देवी।'

'फिर बात तो वे करते थे।'

'खूब करते थे देवी।'

'सब चले गये महानगर। महामात्य गये न ?'

'हाँ देवी।'

'मन नहीं लगता यहाँ,' महिषी ने कहा, 'सनगा थी तो समय खूब कटता था।' और उन्होंने करवट बदली।

× × ×

सनगा चली तो, किन्तु मन उसका डावाँडोल था। वह कहाँ जा रही है ? महानगर में उसका कौन है ? इस शंका का उत्तर आया—कुमार शोणकेतु हैं तो। परन्तु वे उसके कौन हैं ? वह नहीं जानती। आभीर ने उन्हें पकड़ जो लिया है। आभीर ने तो पितृव्य को भी पकड़ लिया था, तब वह क्यों नहीं गई थी ? तब कुमार शोणकेतु स्वयं जो गये थे। तो क्या अब कुमार वृषकेतु नहीं जा रहे हैं ? वे तो विवाह करने जा रहे हैं।

और शोण तो प्रासाद में हैं। यह झूठ ही है। वे वन्दीगृह में हैं। परन्तु तुझे कैसे मालूम ! तेरा हृदय क्यों शोणकेतु के लिए इतना व्याकुल है ?

मन की कोमलता ने कहा—यह समझ में आ गया सनगा कि तू जा क्यों रही है, परन्तु क्या तेरे जाने से कुछ लाभ है ? तू जाकर क्या कर सकेगी ?

सनगा को इस बात पर स्वयं आश्चर्य हुआ कि वह इतना साहस कर क्यों रही है ! उसे ऐसा क्यों लग रहा है कि वह शोण को छुड़ा ही लायेगी ! कल-परसों तो वह आर्त्त होकर भागी थी। उस समय वह एक साधारण स्त्री थी और आज वह भयभीत नहीं है। उसमें इतनी शक्ति कैसे आ गई ? शोण को देख कर ही न ? किन्तु वह तो कुलीन है। सनगा स्वयं क्या है ? वह नहीं जानती। वह तो बचपन से ही वाग्मी मौसी के पास पली है। वाग्मी क्षत्रिया थी। यह वह आज तक नहीं जान सकी कि वाग्मी का पितृव्य से क्या सम्बन्ध था। बचपन में वह आचार्य श्रुतश्रुवा पुराणकार के पास पढ़ती और समय मिलने पर नर्त्तकों के मंडल में जाकर नृत्य सीखती, संगीत सीखती। उससे क्या हुआ ? वाग्मी को केवल धन देने पितृव्य कभी-कभी आते थे। वे उसे कभी महानगर क्यों नहीं लाये ? वाग्मी पूछती—कहें आर्य ! पुत्री वृहद्रती कैसी है ?

'ठीक है आर्ये', वे कहते। और फिर दोनों चुप हो जाते। पितृव्य उसके कौन हैं ? बड़ी होकर जब उसने वाग्मी से माता-पिता के विषय में पूछा था तो वाग्मी ने कहा था—तेरी माता बड़ी सुन्दरी थी। तेरे पिता ने उसे स्नेह से रखा था। वह मर गई। तब तेरे पिता ने फिर विवाह कर लिया। माता दुर्व्यवहार करने लगी। तब तू ढाई वर्ष की थी। तेरे पितृव्य तुझे तेरी माँ से दूर रखने को यहाँ कर गये। फिर वे सब भी मर गये।

'तो पितृव्य कौन हैं मौसी ?'

'पुत्री ! वे तेरा पालन करते हैं।'

'वे मेरे कौन हैं ?'
'कोई नहीं।'
'मेरा वर्ण क्या है ?'
'क्षत्रिय।'
'पितृव्य कौन हैं ?'
'ब्राह्मण।'
'तो वे मेरे सगे पितृव्य नहीं हैं ?'
'नहीं।'
'वे मेरे कौन हैं ?'
'वे तेरे पिता के मित्र हैं।'
'तो वे मुझे पाल रहे हैं।'
सनगा पूछती—मेरा कुल क्या है ?
'पुत्री तू कुलीन नहीं।'
'तो मौसी मैं तो अज्ञात कुलशीला हूँ !'
'यही छिपाने को तो मैं तुझे पाल रही हूँ।'
'तो मौसी मैं नीच हूँ ?'
'क्यों ?'
'मेरे कुल का कोई महत्त्व नहीं ?'
'नहीं वत्से ! मेरा कुल तेरा ही समझ। तू क्षत्रिया है।'
'आचार्य श्रुतश्रवा कहते थे ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ होते हैं।'
'ठीक कहते थे पुत्री। मैं पञ्चाल की हूँ। मैं भी यही मानती हूँ।'
'मौसी तुम अकेली क्यों हो ?'
'पुत्री मेरे परिवार के सब मर गये, मैं ही अभागिनी बच रही हूँ।'
'पहले सब थे ?'
'हाँ।'
'कौन-कौन थे ?'

'अब उनकी याद दिलाकर मुझे क्यों रुलाती है।'

सनगा सोचते-सोचते सिहर उठी। कुछ स्पष्ट नहीं है। फिर उसे एक विचार आया जिससे वह फिर आतंकित हो गई। कुल गर्व की शैय्या पर जन्म होते ही जिसने पाँव पटके हैं वह क्या उसे अपने योग्य समझ सकेगा? शोण का वह अमधुर रूप उसके सामने आ गया, वह जो तीक्ष्ण है, जिसे देख कर लगता है कि किसी चमचमाते खड्ग की नोंक है, जो लहू से भींगना भी जानता है। वह श्रमणों के प्रभाव में स्त्री से घृणा करता है। क्यों? क्योंकि श्रमण संसार त्याग कर रहते हैं। क्या स्त्री सचमुच पाश है? उसमें पाश जैसा है क्या? वे कहते हैं कि स्त्री पुरुष को महान् बनने से रोकती है, उसे परिवार की झंझट में डालती है। क्यों? क्योंकि वह माता बनती है। अपने आप तो नहीं बनती! जो उसे स्त्री से माता बनाता है, उसे तो श्रमण पतित कहते हैं, परन्तु जो जन्म लेता है, जिसे वह पालती है उसको श्रमण यही उपदेश देते हैं कि माता पवित्र है, पूज्या है। तो क्या श्रमण किसी पतित का पुत्र नहीं? क्या श्रमण किसी मायाविनी को ही पूज्य नहीं कहते? सब भ्रम है। आचार्य श्रुतश्रवा पुराणों की कथा सुनाया करते थे। वे कथाएँ कितनी रोचक थीं! दुष्यंत ने शकुंतला का त्याग कर दिया, किन्तु उसने भरत को पुरुष बनाया। क्या वह स्त्री के रूप में, माता के रूप से कुछ हेय थी? नहीं। पुरुष अपने उत्तरदायित्व को कम करना चाहता है। इसलिए वह सब कुछ छोड़ देना चाहता है।

वह इसी प्रकार तर्कवितर्क करती महानगर की वीथियों में घुस गई। उसकी साधारण वेशभूषा देखकर किसी ने भी संदेह नहीं किया। वह एक दूकान पर जाकर कुछ फल लेकर खाने लगी। विक्रेता वैश्य था। जब वह चल कर दूसरी वीथि में आई उसने देखा, एक लम्बा आभीर उसके सामने खड़ा था।

'कौन है तू!' आभीर ने कहा।

'यात्री', सनगा ने कहा।

'अकेली है?' आभीर ने उसी प्रभुत्व से पूछा।

'नहीं,' सनगा ने कहा, 'पीछे मेरे स्वामी अपने अनेक साथियों के साथ आ रहे हैं। तुम कौन हो?' वह बिना झिझके झूठ कह गई।

'मैं राज्य कर्मचारी हूँ।' आभीर ने कहा, 'वे लोग यहाँ क्यों आये हैं?'

'हम ग्रामीण हैं। महानगर में क्रय-विक्रय करने आये हैं।'

हठात् उसे याद आया। कहा—हम बाँस के वस्त्र बुनते हैं।

बीथि पर सांध्यतिमिर उतर आया था। चारों ओर नीरवता थी। वह यह भी नहीं जानती थी कि यह महानगर का कौन सा स्थान है। दिन भटक कर बिता देना था। कभी वह श्रमणों के विहारों की ओर गई, जो एकांत तथा छोटे-छोटे थे। वहीं गुरु अपने शिष्यों को शिक्षा देते। पाठशालाएँ भी देखीं, पण्यागार से लेकर प्रायः सब देख आई थी। अब वह राजप्रासाद की ओर जा रही थी।

'तो वे तुझसे कितनी दूर रह गये हैं', आभीर ने पूछा।

'देव! वे निकट ही होंगे।'

'तू अकेली क्यों है?'

'देव! वे आते ही होंगे।'

आभीर कुछ क्षण चुप रहा। फिर बुदबुदाया—न जाने कहाँ-कहाँ के गुप्तचर घूमा करते हैं। 'हाँ', उसने मुड़कर कहा, 'वे आये नहीं?'

'वही तो,' सनगा ने घबरा कर कहा...'वे आये नहीं......'

तब आभीर हँसा। कहा—सच कह तू कौन है......

सनगा ने कहा—सच कहती हूँ...

किन्तु उसका स्वर काँप गया था। आभीर ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—युवती! तुझे कोट्टपाल के पास चलना पड़ेगा। वे तुझे रात्रि को बंदीगृह दिखायेंगे, या फिर शैय्या। वह फिर हँसा। और सनगा को

खींच ले चला। अन्धकार भरी वीथियों में सनगा की विनतियाँ विनष्ट हो गईं क्योंकि आभीर का कठोर हाथ उसके हाथ को दबाता चला गया। वह सिसकने लगी। उसने उसका हाथ काट खाया। आभीर ने उसके मुख पर कठोर आघात किया।

जब उसका हाथ छूटा वह दुर्ग के भीतर थी और आभीर बात करने को कोट्टपाल के दण्डधर के पास चला गया था। रात्रि का गहरा अंधकार छा गया था। सनगा ने मुड़ कर देखा, द्वार पर प्रहरी खड़े थे। निकट ही माधवीकुंज था। वह भयभीत सी माधवीकुंज के पास जा खड़ी हुई। अन्धकार में हठात् कोई हँसा और सनगा ने सुना—अरे मित्र नाटकेय! सुन्दरी है ? परन्तु प्रभु तो अभी कल वाली सुन्दरी को ही नहीं छोड़ सके। इस वाली को आज रात तुम ले जाओ, कल कोट्टपाल के लिए ले आना।

नाटकेय भी हँसा। भय, जुगुप्सा, घृणा और आतंक से सनगा का रोम-रोम काँप उठा। वह अन्धकार में ही माधवीकुंज की आड़ में प्राचीर से लग कर खिसकने लगी। इस समय उसका हाथ अपने कायबंध में खुँसे छुरे पर था, क्योंकि अब प्राणों पर खेल जाने का समय आ गया था। क्यों नहीं उसने तभी महामात्य की बात को मान लिया। आभीर तो भेड़ियों से भी क्रूर हैं।

जहाँ वह खड़ी थी, उसने माधवीकुंज के पास से आता कोलाहल सुना और शीघ्र भाग कर वह दूसरे प्राङ्गण को पार करके एक अलिंद में छिप गई। घंटा बजने लगा। प्रहरी बदल गये। संभवतः नाटकेय भी चला गया। कुछ देर बाद सनगा भारी-भारी साँसें लेती जब उस स्थान से निकली तो उसने देखा वह एक प्रकोष्ठ के निकट है जिसमें से अगरु-धूम बहता आ रहा है और उस ओर लगभग चालीस हाथ की दूरी पर एक प्रहरी घूम रहा है। वह छिप कर प्रकोष्ठ के द्वार तक गई और ज्योंही उसने देखा किसी कठोर हाथ ने उसके सिर को पकड़ कर भीतर

खींच लिया। सनगा भयाक्रान्त सी चिल्ला उठी। सामने बहुमूल्य वस्त्र धारण किये हुए राजसी प्रभुत्व वाला एक आभीर लम्बा नग्न खड्ग हाथ में लिये खड़ा था। सनगा के हाथ का छुरा अब दीपालोक में झिलमिला उठा। सामने का व्यक्ति हँसा। उसने खड्ग फेंक दिया और क्षिप्र गति से उसका छुरे वाला हाथ पकड़कर इतना उमेठा कि छुरा गिर गया। तब आभीरराज भुमन्यु ने उसे ऐसे देखा जैसे मकड़ी अपने आप जाल में फँसी हुई मक्खी को देखती है।

'छोड़ दो मुझे !' सनगा ने कहा।

भुमन्यु ने हाथ नहीं छोड़ा। कहा—तुम कौन हो सुन्दरी ?

'एक सौवीर स्त्री हूँ', सनगा ने कहा, 'तुम्हारे जैसा ही एक क्रूर पशु मुझे पकड़ लाया है।'

भुमन्यु ने ठठाकर हँसकर कहा—मैं उसे पुरस्कार दूँगा सुन्दरी ! अनजाने ही वह कैसा सौंदर्य ले आया है।

सनगा आर्त्त हुई, कहा—तुम कौन हो ?

'मैं !' भुमन्यु ने कहा, 'आभीरराज भुमन्यु !'

सनगा थर्रा उठी। वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गई। क्या हुआ यह ! कहाँ जा रही थी, कहाँ आ गई ! और भुमन्यु ने अपनी बाहु अब आगे बढ़ा दी थी। उसे लगा द्वार पर एक छाया सी दिखाई दी। कौन था ? कोई नहीं दिखा। भुमन्यु ने देख लिया। कहा—क्या देखती हो ? कोई नहीं है। मैं सबका अधिराज हूँ। मेरे रहते यहाँ कोई नहीं आ सकता। सुन्दरी ! मैं तुम्हें सुन्दर वस्त्राभूषण दूँगा। और तुम्हें इतना गौरव दूँगा कि तुम्हारे भाग्य को देखकर सब स्त्रियाँ जलने लगेंगी।

सनगा ने सूँघा। उसके मुख से मदिरा की गंध आ रही थी। अचानक उसे नाट्यों की स्मृति हो आई। उसने कहा—प्रभु ! मुझे छोड़ दीजिये।

'क्यों ?' भुमन्यु ने कहा, 'प्रातः चली जाना। अभी तो रजनीगंधा ने अपना पूरा सौरभ भी नहीं बिखेरा ?'

'देव !' सनगा ने कहा, 'मेरे बालक भूखे बैठे होंगे, छोटा रो रहा गाहो।'

भुमन्यु पर वज्र गिरा। कहा—बालक ! तुम्हारे ?

'हाँ स्वामी ! छः हैं !'

भुमन्यु का हाथ अलग हो गया किन्तु वह सामने खड़ा रहा। फिर उसके मुख पर घृणा दिखाई दी। और उसने क्रोध से फूत्कार किया—छः ! सौवीरों की स्त्रियों से तो पशु अच्छे होते हैं।

परन्तु उसने कहा—तू झूठ ही कहती है स्त्री ! तेरे सौभाग्य का चिन्ह कहाँ है ?

सनगा के मन में आया कहे विधवा हूँ। परन्तु उसके मन में न जाने क्या-क्या चित्र डोल गये, कि वह यह नहीं कह सकी। वह पत्थर की भाँति स्तब्ध खड़ी हो गई। आभीरराज कहता गया—तेरे छः पुत्र नहीं हो सकते सुन्दरी ! तेरे तो पूरे परिवार में किसी स्त्री के इतनी संतान नहीं होगी। वह हँसा। कहता गया—डरती है सुन्दरी ! आभीर-राज भुमन्यु की तो बात ही और है। जिस दिन कोई सुन्दरी मुझे मिलती है, मैं उस दिन अपने देवता गोपाल को बार-बार धन्यवाद देता हूँ, सिर झुकाता हूँ। सुन्दरी ! गोपाल देवता भी सुन्दरियों को बहुत चाहता है। हमारी तरुणियाँ अभी तक उसकी उपासना करते समय विभोर होकर नृत्य करती हैं। और आज तो आकाश से नक्षत्र टूट कर अपने आप पृथ्वी पर आ गया है !

सनगा का मन थरथरा उठा। आभीरराज ने फिर उसका हाथ पकड़ कर कहा—यह मीठी निशा !

वह हँसा। वह उसे बड़े प्रकोष्ठ की ओर ले गया। उसकी सज्जा देखकर सनगा चमत्कृत हो उठी। उसे लगा जैसे वह सब अत्यन्त बहुमूल्य था और वह अपने साधारण वस्त्रों में उसके बीच में ऐसा अनुभव करने लगी जैसे वह बहुत छोटी थी, बहुत हीन थी। रेशम के चंदातक

देख-देखकर वह चकित हो गई। आभीरराज इसको समझ गया। उसने कहा—यह सब तुम्हारा है सुन्दरी। इन साधारण वस्त्रों को उतार कर जब तुम सुन्दर बहुमूल्य हिरण्य वस्त्रपहनोगी, तब वे सब भी तुम्हारी छवि का स्पर्श करके धन्य हो जायेंगे। 'सुन्दरी', उसने फिर कहा, 'स्त्री, लोग कहते हैं स्त्री भयानक होती है, परन्तु आभीरराज भुमन्यु सदैव सौंदर्यभरी नागिनी को अपना जीवन दूध की भाँति पिला कर पालता है।'

वह उसे घूरने लगा। फिर हाथ छोड़ कर उसने पास के मदिरा-पात्र से मदिरा उँड़ेली और एक घूँट में पूरा चषक पी गया। फिर वह घूरने लगा। उस दृष्टि को देखकर सनगा सिहर उठी। आभीरराज हँसा। हठात् सनगा मुस्कराई। उसने कहा—तुम ही भुमन्यु हो!

उस संबोधन को सुनकर वह चौंक उठा। उसने आश्चर्य से देखा। सनगा बड़ी जोर से हँसी। उसे सुनकर भुमन्यु चौंका और चौंका। उसके नेत्रों में प्रश्न का चिन्ह था। किन्तु सनगा हँसती जा रही थी। आभीर-राज ने आगे बढ़कर चिल्लाकर कहा—क्या बात है?

'कुछ नहीं, ऐसे ही,' सनगा ने कहा और फिर चुप हो गई। अब उसके मुख पर लज्जा का भाव था। भुमन्यु कुछ नहीं समझा उसने कहा—तो भी तो?

सनगा ने मुख मोड़ कर कहा—मैं तो जानें कितना छिप कर तुम्हारे पास आ रही थी! मुझे लोग तुम्हारे पास नहीं जाने देते थे। और देखती हूँ तुम्हें। जो सोचा था वह तो कुछ भी नहीं है। फिर वह विषभरा कटाक्ष किया। आभीर सैनिकों ने मुझे रोका। कहा—नहीं! आभीरराज से सौवीर स्त्री नहीं मिल सकती।

'तुम मुझे बताओ वे कौन थे!' आभीरराज ने कहा, 'मैं उन्हें प्राणदण्ड दूँगा।'

'नहीं प्रभु!' सनगा ने कहा, 'मुझे अपने प्रेम में किसी की हानि नहीं करनी है। वे कहते थे कि महारानी आभीर हैं और हमारी रानी

आभीर ही रहेगी। तू जायेगी तो आभीरराज तुझे महिषी बना लेंगे। वे तो हर स्त्री पर मोहित हो जाते हैं।'

'मैं!' भुमन्यु ने कहा, 'मैं? हर स्त्री पर मोहित हो जाता हूँ। किसने कहा यह सुन्दरी! मैं उसका वध करवा दूँगा।'

'यही मैं सोचती थी स्वामी', सनगा ने कहा, 'कि जिसकी वीरता की कहानियाँ सुनकर जिसके पौरुष ने मुझे बार-बार बुलाया, वह क्या ऐसा कुटिल हो सकता है? वह तो एक ही स्त्री से प्रेम कर सकता है। प्रभु मैं स्त्रियोचित मर्यादा का उल्लंघन करके आई हूँ, किन्तु मैं प्रेम में अंधी हो गई हूँ......'

आभीरराज ने आज तक सुन्दरियों से बलात् सुख लूटा था। वह यह कल्पना भी नहीं करता था कि कोई स्त्री उससे प्रेम भी कर सकती है? स्वयं सौरभेयी ने उसे प्यार नहीं किया फिर दूसरों की बात ही क्या? सब अपने-अपने स्वार्थ में थे। परन्तु यह सुन्दरी उसे प्यार करती है।

'परन्तु!' उसने लड़खड़ाते स्वर में कहा, 'तुम...तुमने मुझसे अभी वह सब झूठ क्यों कहा कि तुम माता हो......'

सनगा ने अत्यन्त लज्जित होकर कहा—पुरुष की वीरता ही आभूषण है और स्त्री का रूप। प्रभु! मैं अपने रूप की परख कर रही थी कि कहीं आपने मुझे पसन्द नहीं किया तो? तो......वह रोने लगी।

आभीरराज का नशा अब बढ़ गया। उसके भीतर का पशु नमित हो गया। अब उसे लगा कि सामने एक भोग्य वस्तु नहीं है, एक सम्माननीय प्राणी है। प्रेम! आभीरराज भुमन्यु इतना बड़ा वीर है कि उसके गौरव ने एक सुन्दरी स्त्री को उस पर ऐसा मोहित कर दिया है कि वह कुल और लोकलज्जा का परित्याग करके आई है? और कभी-कभी इसे देखकर लगता है जैसे बृहद्वती की सी आकृति झांई मारती है! निस्संदेह

यह स्त्री उससे भी अधिक सुन्दरी है। आभीरराज ने देश जीते थे, परन्तु यह विचार कि एक स्त्री का हृदय, शरीर नहीं, हृदय उनके गौरव से पराजित हो गया है, उसे पागल बनाने लगा। वासना की वीभत्स आतुरता नष्ट हो गई। अब उसकी इच्छा पशुता की नहीं रह गई, अब वह बात करना चाहता था जो उसके मन के रिक्त को भर सके। उसने कहा—बैठो सुन्दरी !

सनगा बैठ गई। आभीरराज बड़े सम्मान से उसके सामने एक गजदंत के आसन पर बैठ गया। अब वह आतुरता करके कोई ऐसा काम नहीं करना चाहता था जिससे उस स्त्री के हृदय में उसका महत्त्व कम हो जाय। वह अत्यन्त गम्भीरता से बैठ गया और उसे देखता रहा। सनगा ने कहा—प्रभु।

आभीरराज के मुख से निकला—देवी !

'प्रभु !' सनगा ने पास आकर कहा।

आभीरराज का मन भीतर ही भीतर आनन्द से जर्जर हो गया। क्या इस संसार में यह भी हो सकता है कि विह्वल होकर स्त्री पुरुष की ओर बढ़े। उसे यह तो समस्त जम्बूद्वीप का सम्राट बन जाने पर भी आशा न जागते में थी, न सोते में। सनगा जाल के पास चली गई। बाहर चन्द्रमा जाली में से दिख रहा था। पत्थर काट कर बनाई हुई उस जाली पर उसने हाथ रखकर कहा—मन करता है, गा लूँ !

'तो तुम गाना भी जानती हो देवी।'

'कुछ-कुछ।'

'गाओ न प्रिये !'

'नहीं प्रभु !' सनगा ने कहा, 'मैं नहीं गाऊँगी।'

'क्यों ?'

'तुमने मेरे शत्रु को प्रासाद में इतने उपकरणों में सजा कर रखा है।'

'कौन है वह', आभीरराज ने कहा। वह चौंका।

'कहूँ !'

'कहो देवी !'

'वह शोणकेतु, वन्हिकेतु का पुत्र ।'

आभीरराज ने हँसकर कहा—वह तो बंदीगृह में पड़ा है सुन्दरी। फिर चौंक कर कहा—पर तुम्हारी उसकी शत्रुता कैसी ?

'उसे ज्ञात जो हो गया था कि मैं तुमसे......' फिर वह लजाकर चुप रही। फिर धीरे-धीरे कहा—कहता था आभीर विदेशी है, तू सौवीर है......देव ! वह मुझसे......

उसने सिर झुका लिया।

'सुन्दरी', भुमन्यु ने कहा, 'निश्चिन्त रहो, वह कल ही मार डाला जायगा। मुझे उसके अग्रज की प्रतीक्षा है, वह कल आ जायेगा। तुम गाओ न ! प्रिये ! कैसी मदिर-मदिर सुरभि वायु पर बही आ रही है !'

सनगा गाने लगी। गीत की कोमल लहरियाँ धीरे-धीरे प्रकोष्ठ से निकल कर बाहर फैलने लगीं। आर्य ह्रीमान ने सुना तो चौंके। बृहद्वती स्वयं उठकर बैठ गई। आर्य ने इंगित किया। स्त्रियों ने द्वार रक्षा का द्वार घेरा। और वह नीचे के कक्षों में से होता हुआ सीधा आर्य गंधकाल के पास पहुँचा, जो इस समय भी कुछ सोच रहा था।

ह्रीमान् ने कहा—आर्य ! आज आभीरराज कोई दूसरी स्त्री ले आया है। वहाँ से एक सौवीर गीत का स्वर आ रहा था।

गंधकाल ने कहा—तो आर्य ! इसमें सोचना क्या ? सौरमेयी को पहुँचा दो। जितना विक्षोभ उधर से उसमें जागेगा, उतना ही ! उसने सिर हिलाया और मुस्कराकर ह्रीमान पर भेद भरी दृष्टि डाली और ह्रीमान उस दृष्टि की मार से मन ही मन दुमुही सा सिमट गया, जैसे अब उसका मुँह दोनों ओर था। वह एक भ्रम में सर्प लगता था अवश्य, परन्तु वैसे वह इतना निर्बल था कि उसे कोई भी उठाकर बाहर फेंक दे।

हीमान चला गया। गंधकाल ने दाढ़ी खुजलाई। क्योंकि आखिर पुरुष की मर्यादा कब तक चुप रहती। वह मूलत: मुखर और कामुक होता है। अब वे ऊपरी आवरण कब तक काम देते ! इतनी देर तक संकोच था। बात हो गई, गीत हो गया, अब भुमन्यु की दृष्टि में अगला पग एक विभोर आलिंगन था। उसने बढ़ कर हाथ फैला कर कहा—सुन्दरी! तुम बादल की सी मस्ती में झूमती और गरजती आई थीं। भीतर आई तो बिजली की भाँति कौंधने लगीं। और अब सतरंगे इन्द्रधनुष की भाँति मेरे हृदयाकाश में तुम एक क्षितिज से उठी बीच में जाकर रुक गई हो। आओ, हम तुम दोनों क्षितिजों को एक कर दें।

सनगा द्वार की ओर इंगित करके भयातुर सी चिल्लाई—वह देखिये!

आभीरराज आवेश में बढ़ा। कोई नहीं दिखा। फिर वह बाहर निकल कर देखने लगा। सनगा बगल के द्वार से भीतर भाग चली। आभीरराज चिल्लाया—कौन है ?

'कोई नहीं है !' कहता हुआ जब वह लौटा तो देखा सनगा नहीं थी। उसकी समझ में नहीं आया। क्या वह भाग गई ? या कोई मुझे उधर भटकाकर उसे उठा ले गया ? वह भीतर घुसा परन्तु जिस द्वार से वह घुसा वह दूसरे ही अंधकारमय प्रांगण में निकलता था। इधर सनगा भाग चली। अंधकार में वह किसी से टकराई। दोनों गिरे। और दोनों झपटकर खड़े हो गये।

'कौन है तू', एक स्त्री ने तीव्र स्वर से पूछा।

सनगा का मन स्थिर हुआ। कहा—तू कौन है ?

'मैं कौन हूँ ?' स्त्री ने आश्चर्य से कहा, 'मैं पट्टमहिषी सौरभेयी हूँ।'

वह समझी थी कि सुनने वाली काँप उठेगी। परन्तु सनगा ने परिस्थिति का लाभ उठाया। कहा—तो तू ही वह आभीर स्त्री है।

'तू कौन है ?' सौरमेयी ने क्रोध से कहा।

'मैं ! शत्रु ! तेरी शत्रु हूँ। तेरा यौवन और स्त्रीत्व सब व्यर्थ है क्योंकि तेरा पुरुष तुझे पशु से भी हीन समझता है।'

'अब जब तुझ जैसी तितलियाँ स्वयं उड़कर आती हैं तो और आशा ही क्या है ?' सौरभेयी ने उत्तर दिया।

दूर कहीं आमीरराज चिल्ला रहा था—सुन्दरी ! सुन्दरी !!

'सुना ?' सनगा ने कहा, 'यह एक विवाहित पुरुष की व्याकुल पुकार है ! धिक्कार है तुझे स्त्री ! मैं तुझे इस उत्तरदायित्व से मुक्ति दूँगी।'

'क्या मतलब ?' सौरभेयी ने चौंक कर कहा ?

'वह पागल हो रहा है न ?' सनगा ने उत्तर दिया। सौरभेयी का मन थर्रा उठा। अंधकार में उसकी दृष्टि ने अब स्त्री को देखा। उसने कहा—चली जा यहाँ से।

'क्यों ?' सनगा ने कहा।

'मैं पट्टमहिषी हूँ। तुझे आज्ञा देती हूँ।'

'यदि मैं न सुनूँ तो ?'

'तो मैं तुझे निकलवा सकती हूँ।'

'यदि तेरे पति को ज्ञात हो गया तो ?'

सौरभेयी ने आतुर कण्ठ से कहा—तू क्या चाहती है ?

'अपना प्रेमी !' सनगा ने कहा।

'प्रेमी !! कौन ! आमीरराज !!

'नहीं।'

सौरभेयी का मन शांत हुआ। कहा—वह कौन है ?

'बताकर भी होगा क्या ? उसे तुम नहीं छोड़ सकतीं। मुझे आमीरराज के पास जाना होगा। तुम्हारे पास अधिकार ही क्या है ?'

'अधिकार !' सौरभेयी ने फूत्कार किया, 'जानना चाहती है ? बोल कौन है वह !'

'शोणकेतु !'

सौरभेयी का शरीर सहसा पसीने से भींग गया। शोण! वहीं तो वह बन्दीगृह में छिपकर जा रही थी उससे मिलने जब ह्रीमान ने सूचना दी कि आभीरराज एक नई स्त्री ले आया है। वह नहीं सह सकती कि उसके पास कोई भी स्त्री हो। वह नहीं सह सकती। किन्तु फिर वह शोण-केतु के पास क्यों जा रही थी। क्योंकि उसका भव्य ललाट उसके मन पर अंकित हो गया था। और उस पुरुष को देखकर ही लगता था कि उसे किसी स्त्री ने छुआ भी नहीं। यह कितना बड़ा आकर्षण था उसमें!

उसने कहा—वह तुम्हारा कौन है?

'वह मेरा सब कुछ है,' सनगा ने कहा।

'तो वह...' सौरभेयी रुक गई। तो वह क्यों जाये? उसने प्रेम किया है। ऐसा कि एक स्त्री उसके लिए अपने को दाँव पर चढ़ाकर आई है। उसे भय हुआ। नहीं जो है उसे ही पकड़ रखना होगा।

'क्या कहती हो,' सनगा ने कहा, 'यदि तुम उसे नहीं छुड़ा सकती तो मैं छुड़ाऊँगी। यदि उसके लिए मुझे अपनी बलि भी देनी पड़े तो भी छुड़ाऊँगी। मैं भुमन्यु के पास जाती हूँ।'

'तुम नहीं जा सकतीं,' सौरभेयी ने कहा, 'मेरी शक्ति देखना चाहती हो? चलो मेरे साथ।'

सौरभेयी आगे-आगे चली, सनगा पीछे। प्रहरी बदलने लगे। सौरभेयी सीधे बन्दीगृह के द्वार पर गई। दण्डधर ने अभिवादन किया। सौरभेयी के इंगित से द्वार खुल गया। सौरभेयी भीतर घुसी। सनगा भी। शोणकेतु जाग रहा था। दीप के क्षीण आलोक में सौरभेयी ने उसे देखा। वह सिंह की भाँति उठा। सौरभेयी मुग्ध नेत्रों से देखती रही। सनगा को देखकर शोण चौंक उठा किन्तु सनगा ने मुँह पर उँगली रख कर चुप रहने का इंगित करके कहा—पट्टमहिषी को प्रणाम करो।

शोण झुका नहीं। उसने सौरभेयी को देखा।

सौरभेयी के नेत्रों में वासना जल उठी। उसने सनगा की बात ही

नहीं सुनी। सनगा ने कहा—पट्टमहिषी! शीघ्रता करें। कहीं आभीरराज आ गये तो!

सौरमेयी जागी। फिर वह कठोर दिखने लगी। वह आगे-आगे चलने लगी। पीछे-पीछे सनगा। उसके पीछे शोणकेतु। शीघ्र ही वे खुले में आ गये। पट्टमहिषी ने एक गुप्तद्वार खोलकर कहा—जाओ!

सनगा उसमें से निकली। शोण बढ़ा। सौरमेयी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उस स्पर्श में एक ताप था। शोण ने मुड़कर देखा। महिषी के नेत्रों में हलाहल था।

'जा रहे हो?' सौरमेयी ने कहा।

'हाँ, तुम्हारी दया से,' शोण ने उत्तर दिया।

'मुझे तो तुमने कुछ नहीं दिया इस उपकार के लिए', महिषी ने कहा।

'क्या चाहती हो?'

'दे सकोगे?'

'यदि निर्वासित की सामर्थ्य में होगी तो अस्वीकार नहीं करूँगा।'

'तो मुझे भी ले चलो।'

'कहाँ?' उसने चौंककर पूछा।

'जो यह स्त्री है, मैं भी वही बनकर रहूँगी।'

'परन्तु यह तो मेरी कोई नहीं।'

'तो वह तुम्हारे लिए इतना कष्ट क्यों सह रही है?'

शोण कठोर था। श्रमणों की छाया में रहा था, माता के रूप को जानता था। यह सब उसके जीवन में एक नया अनुभव था। वह दासों को दबा सकता था, शत्रु का संहार कर सकता था, परन्तु यह सब क्या था।

'मैं नहीं जानता', उसने कहा।

सौरमेयी ने हठात् उसका आलिंगन किया। कहा—तो मुझे ले चलो।

शोण ने उसको धक्का देकर दूर हटा दिया। और वह कह उठा—स्त्री! छलना! माया! बन्धन!

वह कूदकर बाहर निकल गया। अंधकार में महिषी ने पुकारा—न जाओ......

परन्तु फिर कुछ उत्तर नहीं आया। भीतर की ओर सैनिकों की भाग-दौड़ हो रही थी। सौरभेयी खड़ी रही। फिर वह द्वार बन्द करके लौटी। मन गल रहा था। जब वह प्रकोष्ठ पार करके प्रांगण में आई। आभीरराज भुमन्यु ने रोक कर कहा—वह स्त्री कहाँ है ?

'वह अपने प्रेमी के साथ भाग गई', सौरभेयी ने क्रोध से उत्तर दिया।

'कौन था वह ?'

'शोणकेतु !'

शोण ! शत्रु कि मित्र !

'तो वे कहाँ हैं ?' उसने पूछा।

'वे भाग गये,' सौरभेयी ने उत्तर दिया।

'तो तुमने उन्हें मुक्त कर दिया ?' भुमन्यु ने कहा, 'तुमने उन्हें छोड़ दिया ?'

'मैं अपने अधिकार नहीं छोड़ सकती आभीरराज ! मैं आभीरराज पाशिवाट की दुहिता हूँ, सौवीर स्त्री नहीं।'

'महिषी !' आभीरराज गरजा, 'तुम सीमा का उल्लंघन कर रही हो। भुमन्यु स्त्री का दास नहीं है। कहाँ है वह स्त्री ?'

'मुझसे ही इतनी निर्लज्जता से पूछ रहे हो ?'

'निर्लज्जता !!' भुमन्यु का हाथ उठा और सौरभेयी के मुँह पर गिरा। वह टकरा कर गिर गई। भुमन्यु गरजा—मूर्ख स्त्री ! शत्रु भी हाथ से चला गया। तेरी ईर्ष्या ने सर्वनाश कर दिया और तूने राज्य पर आघात किया है।

भुमन्यु की गरज का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह उठ खड़ी हुई। उसके नेत्रों में चिनगारियाँ जल रही थीं। उसने कहा—मूर्ख ! सौरभेयी पर तूने हाथ उठाने का दुस्साहस किया ? मैं पार्वत्य मंडलेश्वर

मद्रविजयी पाशिवाट की दुहिता हूँ भुमन्यु! मेरे कारण ही तू आज आभीरराज है। यदि मैं कल किसी दूसरे का वरण कर लूँ तो यही आभीर तेरी हत्या कर देंगे। तूने मुझ पर हाथ उठाया ! तेरा इतना साहस ! बर्बर पशु ! तू आभीरों के ऊपर सौवीरी लाना चाहता है ? मैं तेरे इस साहस का फल तुझे······

परन्तु वह कह भी नहीं पाई कि भुमन्यु ने क्रोध से उसके मुख पर फिर चाँटा मारा और वह चिल्लाया—दूर हो जा ! मेरी आँखों के सामने से दूर हो जा, अन्यथा तेरे टुकड़े-टुकड़े करके चील-कौओं को खिला दूँगा।

वह एक पग और बढ़ा कि अंधकार में से भागती हुई दस स्त्रियों ने नंगी तलवार लेकर सौरभेयी को चारों ओर से घेर लिया और वे उसकी रक्षा के लिये खड़ी हो गईं। वे सब माद्री थीं।

सौरभेयी उठी। भुमन्यु भाग खड़ा हुआ। माद्री स्त्रियाँ सौरभेयी के पितृगृह की दासियाँ थीं। सौरभेयी ने देखा, सामने ह्रीमान ने सिर झुकाया।

'देवी !'

सौरभेयी क्रोध से पागल थी। बोल नहीं सकी।

'देवी ! मैंने ही इन दासियों को भेजा था,' ह्रीमान ने फिर कहा।

सौरभेयी फिर भी कुछ नहीं कह सकी जैसे उसका मन भाराक्रांत था। वह देखती रही। वह चुपचाप चली गई। किंतु प्रभात होने के पहले ही आभीरराज के प्रकोष्ठ की दासियाँ चिल्ला उठीं। उषा के स्वर्णिम प्रकाश में उस चीत्कार से जागे हुए आभीरराज ने देखा कि एक शुभ्र स्फटिक की फलका पर सुवर्ण के थाल पर रक्त से भींगे हुए दो कटे

सिर रखे हैं। एक मदनमंथिनी का, दूसरा वावाता सुवर्चला का और उनके पास एक आभीर खड्ग रखा है।

सौरमेयी की प्रतिहिंसा का प्रारम्भ हुआ था। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को रातोंरात मिटा दिया था। आभीरराज ने अपना खड्ग उठाया और वह जब सौरभेयी के प्रासाद पर पहुँचा, उसने देखा मद्र और सौवीर सैनिकों ने उसे चारों ओर से घेर रखा है। उसकी पत्नी की भगिनी अजावहा और उसका पति कण्डरीक द्वार पर खड़े हैं।

भुमन्यु क्रोध से पागल सा लौट आया। और उसने प्रकोष्ठ में जब कटे सिर फिर देखे तो उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे ! वह किंकर्तव्यविमूढ़ सा बैठ गया।

× × ×

प्रभात के अरुण आलोक में ऊँचे काले तुरंग पर चढ़े हुए व्यक्ति ने दुर्गद्वार के सामने आकर अश्व रोक दिया और उसके साथ आई हुई भीड़ का कोलाहल बढ़ चला। प्रहरियों ने देखा तो उन्होंने अपने धनुष पर बाण चढ़ाये। किंतु तभी भीमद्वार अरां कर खुलने लगा।

आर्य गंधकाल बाहर आ गया। वह बहुमूल्य उत्तरीय ओढ़े था। उसने आगे बढ़ कर कहा—स्वागत कुमार ! और अभिवादन किया।

कुमार वृषकेतु ने आगे बढ़ कर प्रणाम किया। प्रजा में से कुछ लोगों ने बढ़कर तुरंग को पकड़ लिया।

'आर्य गंधकाल !' वृषकेतु ने पास आकर कहा, 'यह सब सत्य है !' आर्य गंधकाल ने उसका युद्ध वेश देखा। शिर पर चमकता हुआ शिरस्त्राण। वक्ष पर लौह जाल और उसके कायबंध के चर्म से दोनों ओर लटकते दीर्घ खड्ग और बाँये हाथ का चौड़े फलक का भल्ल। वह पाँवों में जंघा तक के चर्म उपानह पहने था। उसकी गति इतने पर भी अत्यन्त क्षिप्र थी। वह जब मुड़ता था तब जैसे तुरंग की याद आती थी।

गंधकाल ने प्रभावित होकर कहा—आर्य सोचते होंगे कि मैं यहाँ क्यों हूँ ? उसने इधर-उधर के सैनिकों से बचाकर धीरे से झुक कर कहा—आभीर का अंत कर सकोगे ? और फिर वह जोर से हँसा। कहा—परन्तु आप तो मुझे शत्रु समझते होंगे। दुर्ग में पदार्पण करेंगे ?

वृषकेतु सोचने लगा।

गंधकाल ने कहा—आर्य ! अकेले चलने में भयभीत हैं ?

'भय ?' वृषकेतु ने कहा, 'सौवीरों की परम्परा को आर्य गंधकाल सौवीर होते हुए इतनी शीघ्रता से भूल सकते हैं ? आश्चर्य है। आप मेरे खड्ग को भूल गये ?'

'भूल गया होता तो निमन्त्रण क्यों भिजवाता ?' गंधकाल ने तत्पर उत्तर दिया।

इस समय प्रजा चिल्लायी—कुमार वृषकेतु की जय !

दुर्ग हिल उठा। गंधकाल चौंका। प्रजा सशस्त्र थी। गंधकाल ने कहा—चलें प्रभु !

'चलो,' कुमार ने कहा।

दोनों दुर्गद्वार में से भीतर चले गये।

वृषकेतु ने कहा—तुमने मुझे विवाह के लिए ही तो निमन्त्रण दिया है न ?

'हाँ देव !'

'किंतु यहाँ तो कोई प्रबन्ध नहीं ?'

गंधकाल हँसा। कहा—मैं जानता था आपको संदेह होगा। चलिये, मैं आगे चलता हूँ।

गंधकाल आगे-आगे चलने लगा। कुछ ही देर बाद वे जिस विशाल कक्ष में पहुँचे वहाँ आभीरराज भुमन्यु घूम रहा था। उसने मुड़ कर कहा—कौन, वृषकेतु !

गंधकाल ने इंगित किया। वृषकेतु ने बढ़कर कहा—तो भुमन्यु तुम ही हो !

आभीरराज का खड्ग उसके हाथ में चमक उठा।

'भुमन्यु !' वृषकेतु ने कठोर स्वर में कहा।

'हाँ वृषकेतु !' भुमन्यु ने कहा। वह युद्धवेश में था ही, इस समय आतुर भी था। वह कहता गया, 'आभीरों ने किसी प्राचीन काल में परम्परा बनाई थी कि जो खड्ग लेकर वृषभ को पराजित कर सकेगा वही उनकी कन्या का स्वामी होगा, किंतु समय बदल गया है। परन्तु कन्यादान के पूर्व वे अब भी उसके रक्षक की शक्ति देखते हैं। यदि वह योग्य नहीं होता तो नहीं देते।' भुमन्यु ने खड्ग टेढ़ा करके उसे कठोर दृष्टि से देखकर कहा, 'तो सौवीरों में एक भी यदि ऐसा वीर है तो आभीरराज भुमन्यु लौट जायेगा। आज तक सौवीर स्त्रियाँ नग्न होकर आभीरों की वासना तृप्त करती रही हैं। यदि तुममें इतनी शक्ति है और तुम तत्पर हो तो भुमन्यु तुम्हें द्वन्द्व के लिए ललकारता है।'

वृषकेतु ने उसके खड्ग पर अपना खड्ग रखकर कहा—तो भुमन्यु ! आभीर जैसी वन्य जाति की स्त्री को आज तक सौवीरों में स्त्री ही नहीं समझा जाता था जो उसे हम अपने वीर्य धारण करने योग्य समझते। किंतु यदि तुम्हें बल का गर्व है तो आज सौवीरों का रक्त देख लो।

गंधकाल ने बीच में आकर कहा—आभीरराज ! कुमार की शक्ति आपने देखी है ? वह बीच में था, जब उसने आभीर को देखा तो उधर आँख का इंगित किया, जब कुमार की ओर देखा तो कुमार की ओर इंगित किया। वह वास्तव में दुधारा बन कर खड़ा था। दोनों भ्रम में थे।

बाहर इस समय कोलाहल हो रहा था—द्वार खोल दो। द्वार उन्मुक्त करो। आभीरराज ने गंधकाल से कहा—यह क्या है ?

'देव ! प्रजा कोलाहल कर रही है।'

'सौवीर !!' भुमन्यु ने घृणा से कहा, 'उन्हें कुचल दो !'

'वह तुम्हारी शक्ति से परे है,' वृषकेतु ने कहा।

'सौवीर !' भुमन्यु गरजा।

'आभीर !' व्यंग्य से वृषकेतु हँस दिया।

गंधकाल ने कहा—जब दो बिजलियाँ टकराती हैं तो नीले आकाश का गौरव प्रचण्डाघातों से प्रतिध्वनित होने लगता है। जब दो वीरों के खड्ग सर्पों की भाँति मिलते हैं तब वह एक आश्चर्यजनक घटना होती है। प्रजा आज दो शक्तियों का मिलन देखना चाहती है। आज उसे आने दीजिये। आज का जय-पराजय वह स्वयं देख लेगी। फिर आपका सम्बन्ध सदैव के लिए निश्चित हो जायेगा।

दोनों के खड्ग झुके और म्यानों में चले गये। संवाद अनुचरों ने पहुँचाया। दुर्ग के विशाल प्राङ्गण में प्रजा टूट कर जमा होने लगी। एक ओर आभीर सैनिक थे, दूसरी ओर सौवीर प्रजा। सौरभेयी ने सुना तो वह विभ्रांत रह गई। वह चिंता में पड़ गई। उसने आर्य ह्रीमान को बुलवाया। पर वह भी प्राङ्गण में था। वह प्रतीक्षा करती रही।

इस समय प्राङ्गण के बीच में दोनों वीर आ गये थे। आर्य गंधकाल ने चिल्लाकर कहा—नागरिको ! शांत रहो। आज आभीरराज भुमन्यु और केतुकुल के कुमार वृषकेतु एक दूसरे के सम्मुख खड़े हैं। यदि इस युद्ध में आर्य वृषकेतु जीत गये तो वे आभीरराज के कुल की आभीर कन्या से परिणय करेंगे, किंतु यदि वे पराजित हो गये तो यह सदैव के लिए प्रमाणित हो जायेगा कि सौवीरों के दो श्रेष्ठ वीरों में से एक आभीरराज भुमन्यु के सामने कोई सामर्थ्य नहीं रखता।

भीषण कोलाहल हो उठा। युद्ध प्रारम्भ हो गया। वह खड्ग चलाने का अपूर्व कौशल देखकर दोनों योद्धाओं के पक्ष के लोग बार-बार चिल्ला उठते। उनके हाथों में वे खड्ग चमचमाते हुए अत्यन्त क्षिप्र वेग से चल

रहे थे। दोनों दीर्घाकार और दोनों क्रुद्ध। उनकी गति से कभी-कभी सिंह का आभास होता। मुख से भी हुँकार सी फूट निकलती। यह ज्ञात नहीं होता था कि आखिर इनमें से कौन अधिक कुशल है। हठात् आभीरराज ने बढ़कर आक्रमण किया। वृषकेतु ने झुककर वार बचाया, परन्तु उसी समय वृषकेतु के प्रचण्ड खड्गाघात से आभीरराज का खड्ग छूट गया और वह लुढ़क गया। निकट ही था कि वृषकेतु उसको मार डालता कि गंधकाल बीच में आ गया। उसने चिल्लाकर कहा—वृषकेतु की जय! सौवीर की जय!

भुमन्यु का मुख काला पड़ गया, किंतु गंधकाल ने उसे मरने से बचा लिया। प्रजा का जयजयकार ईंट-ईंट को हिला रहा था। भुमन्यु ने उठ कर कहा—स्वागत है सौवीर! आज तुझे मैं अपने कुल की कन्या दूँगा।

वृषकेतु ने कहा—आभीर! तूने अभी सौवीर नहीं देखा था।

प्रजा की जयजयकार सुन-सुन कर सौरभेयी का हृदय काँपने लगा। उसने कहा—कदम्ब मेखला!

माद्री चेरी ने कहा—देवी!

'यह क्या हो रहा है!'

'देवी! अभी कुमार वृषकेतु ने आभीरराज को द्वन्द्वयुद्ध में पराजित कर दिया।'

'पराजित कर दिया!' सौरभेयी को जैसे आग छू गई। आभीरराज उसकी दृष्टि में एक चूहा हो गया। घृणा से उसका मुख विकृत हो गया। वह प्रकोष्ठ में घूमने लगी। फिर उससे रहा नहीं गया। वह बाहर निकल पड़ी। उसकी अंगरक्षिकाएँ उसके दाँये-बाँये चलने लगीं। सौरभेयी ने जाकर देखा कि नाग कोण के कक्ष में वाद्यध्वनि हो रही थी और एक अवगुण्ठनमयी आभीर स्त्री को नंगे खड्गों के बीच में अग्नि के चारों ओर वृषकेतु के साथ प्रदक्षिणा कराया जा रहा है। वह सोचने लगी। तो

इन्होंने वृषकेतु को अवगुण्ठन की परम्परा आभीर पद्धति बताई है ! और यह इतने खड्ग क्यों खिंचे हैं ! वह हट गई।

वाद्यध्वनि बंद हो गई। प्राङ्गण के पार आभीर सैनिक दिखाई देने लगे। प्रजा साथ बढ़ी आ रही थी। हलचल हो रही थी। सब चले गये। वृषकेतु और नववधू रह गये। केवल अग्नि की ज्वाला जल रही थी। वृषकेतु ने कहा—सुन्दरी !

उसने अभी देखा नहीं था, किंतु प्रायः युवकों की धारणा होती है कि उनकी स्त्री तो सुन्दरी होगी ही। वृषकेतु ने उसे मौन देख कर कहा—आज सौवीरों और आभीरों ने नया सम्बन्ध स्थापित किया है।'

परन्तु स्त्री फिर भी नहीं बोली। वृषकेतु को भय हुआ कहीं कोई गूँगी तो उसकी सहचरी नहीं है क्योंकि अवगुण्ठन में से घर-घर का सा शब्द सुनाई दे रहा था।

वृषकेतु ने चौंक कर उसका अवगुण्ठन खोल दिया। देखकर वह भौंचक रह गया। स्त्री के हाथ पीछे बँधे थे। आँखों पर पट्टी थी, मुख में कपड़ा ठूँसा हुआ था। उसने काँपते हाथ से पट्टी खोली और जैसे उस पर वज्राघात हुआ। उसके मुख से शब्द निकला—बृहद्वती !

बृहद्वती के नेत्रों पर रो-रोकर सूजन आ गई थी। कुमार ने उसके हाथ खोले, मुख का कपड़ा निकाला। बृहद्वती गरजी—नीच क्षत्रिय ! तुम्हारे भीतर इतना विष था ! तुम्हारे केतुकुल के लिये मेरे पिता ने क्या नहीं किया, किंतु यही उसका फल है कि तुमने उसकी विधवा पुत्री का धर्म विनष्ट किया है ? नराधम ! क्षत्रिय होकर तुमने ब्राह्मणी पर दृष्टिपात किया ? तुमने आभीरराज को पराजित करके विवश किया कि वह मेरे पिता के आने के पहले मेरा विवाह तुम से कर दे, अन्यथा पिता ऐसा नहीं होने देंगे ? विश्वासघाती ! तुमने विजय के मद में मेरा ही सर्वनाश किया। तुमने मेरी पवित्रता के मोल पर आभीरों को प्राणदान दिया ? तुमने मुझे बलात् पकड़वाया। मैं विवाह के पहले ही से जानती

थी कि तुम्हारी मुझ पर कुटिल दृष्टि थी। परन्तु तुम इतनी दूर तक जा सकते हो कि विदेशी से षड्यन्त्र कर सकोगे। और अपने पाप को छिपाने के लिये तुमने मुझे आभीर वेष में लाने को कहा, जिससे बाद में तुम अनबूझ बन जाओ। जी करता है तुम्हारी हत्या कर दूँ! वह बैठ कर रोने लगी। 'क्यों नहीं मर गई मैं। परन्तु आर्य ह्रीमान कहा करते थे कि वे मेरी रक्षा करेंगे। मैं उसी की प्रतीक्षा करती रही और मेरा सर्व-नाश हो गया!' अब वह धरती पर सिर पटकने लगी।

धीरे-धीरे वृषकेतु की समझ में आया। इतना बड़ा षड्यंत्र। और उसको जाल में ऐसे फाँस लिया गया, जैसे वह केवल एक मत्स्य है! बृहद्वती रो रही थी। वृषकेतु ने उसका हाथ पकड़ कर उसे बलपूर्वक उठा लिया और कहा—महामात्य की दुहिता! तूने सौवीर केतुकुल पर लाञ्छन लगाया है। उसने हाथ छोड़ दिया, और कहा—जिस वामाङ्ग के नाम पर तुझ वामा को मैंने जिस अग्नि के सामने ग्रहण किया है, उसी वामाङ्ग को, उसी अग्नि में मैं दहन करता हूँ क्योंकि मैं पवित्र हूँ और तू जो कह रही है, वह तुझे षड्यंत्रकारियों ने बहकाया है। वृषकेतु ने आग की लपट पर हाथ धर दिया। शीघ्र ही हाथ जल उठा। उसकी चर्रांध सूँघ कर बृहद्वती ने उसे धक्का देकर हटा दिया और रोते हुए कहा—कुमार! क्या यह सब कुचक्र है?

वृषकेतु के बायें हाथ की जली खाल देखकर वह चिल्ला उठी। वृषकेतु ने खड्ग निकाल कर दायें हाथ में ले लिया और कहा—धोखा! षड्यंत्र!

'अपमान! कुमार!' बृहद्वती ने कहा, 'अपमान! मैं विधवा हूँ।'

'यह गंधकाल और ह्रीमान् का कार्य है?' वृषकेतु ने कहा।

'नहीं देव! मुझे आभीरों ने बाँधा था।'

'वे कहाँ थे?'

'मैं नहीं जानती।'

'तो क्या वे भी भ्रम में हैं ?'

'मैं नहीं कह सकती ।'

गंधकाल का चक्र अब प्रकोष्ठ के बाहर प्रजा में चल रहा था। प्रजा और सेना का संतुलन सा हो रहा था। दोनों की शक्ति भूल रही थी। एक बार बाहर किसी ने ताली बजाई। आर्य गंधकाल बाहर आ गया। क्रौष्टेय वृजिनीवान् था।

'क्या संवाद है ?' गंधकाल ने कहा।

'देव ! एक-एक क्षण अमूल्य है।'

'अमूल्य का क्या अर्थ है यहाँ ? व्यर्थ या जिसका मोल नहीं ?'

'देव ! वृषकेतु और बृहद्वती एक हो गये।'

'तो उनका संदेह किस पर है ?'

'आभीरों पर।'

क्रौष्टेय वृजिनीवान् चला गया। गंधकाल छिपकर अलिंदों में चलने लगा। उसके पीछे-पीछे आर्य ह्रीमान् चुपचाप चला जा रहा था। सौरमेयी उसी समय कक्ष में लौटी थी। गंधकाल ने भीतर घुसते हुए कहा—पट्टमहिषी ! अनर्थ हो गया !

पट्टमहिषी ने मुड़कर कहा—आप भी तो थे वहाँ !

'देवी ! मुझे विश्वासघात का तो ज्ञान न था ?'

'विश्वासघात ?' सौरमेयी ने कहा, 'फिर कहें आर्य।'

'देवी !' गंधकाल ने कहा, 'आभीरराज ने सर्वनाश कर दिया। वे किसी की सम्मति नहीं लेते। राजकुल की कन्या बृहद्वती को जब वे अंकशायिनी नहीं बना सके तो प्रतिहिंसा में उन्होंने उसका धर्म नष्ट करने को समस्त प्रजा को विक्षुब्ध कर दिया है। विद्रोह सिर पर है।'

सौरमेयी डरी नहीं। उसने खड्ग उठाया और कहा—पाशिवाट पुत्री डरती नहीं आर्य ! मेरे आभीर सैनिक कहाँ हैं ?

'देवी ! अनर्थ हो जायेगा। दुर्ग में सशस्त्र प्रजा है।'

'इस समय कुछ हो सकता है ?' सौरभेयी ने मुड़कर कहा।

'इसीलिए आया हूँ देवी! किन्तु आपके अतिरिक्त और किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं है। आप स्त्री अवश्य हैं......'

'गंधकाल!' सौरभेयी ने फूत्कार किया, 'स्त्री हूँ तो क्या दासी हूँ। मैं पार्वत्य मण्डलेश्वर मद्रविजयी पाशिवाट की दुहिता हूँ। सावधान होकर बात करो। मेरे ऊपर कोई शक्ति नहीं।'

'देवी! उत्तेजित न हों,' गंधकाल ने कहा, 'आपको जाकर आभीर-राज को रोकना ही होगा। उन्होंने बृहद्वती को धर्मच्युत किया है ताकि वे उसे अब पराजित कर सकें!'

'असंभव!' सौरभेयी ने कहा, 'जानते हो मदनमंथिनी और सुवर्चला का क्या हुआ ?'

गंधकाल मन ही मन काँप उठा। कहा—देवी की शक्ति से परिचित हूँ। आप यदि बृहद्वती और वृषकेतु को प्रजा तक पहुँचा दें तो विद्रोह रुक जायेगा।

'कण्डीरक कहाँ है कदम्ब मेखला ?' सौरभेयी ने कहा।

'देवी', दासी ने कहा, 'वे देवी अजावहा के प्रासाद में हैं।'

'सूचना दे। कहना मेरी आज्ञा है वे तत्पर होकर मेरे प्रासाद में आयें। तू जा!' दासी चली गई। सौरभेयी ने अपना वाक्य पूरा किया—तब तक मैं उन्हें छुड़ा कर आती हूँ।

'देवी मुझे क्या आज्ञा है ?' गंधकाल ने कहा।

'आज्ञा की प्रतीक्षा करो आर्य! जा सकते हो।'

गंधकाल जब अलिंद में आया आर्य ह्रीमान् ने टोका—क्या कहती थी आर्य!

'मुझे कुछ भी नहीं कहना पड़ा आर्य! मुझे तो तुमसे ईर्ष्या हो रही है।'

'सच !' ह्रीमान् के दाँत निकले।

'मुझे भूल तो नहीं जाओगे !'

'क्या कहा उसने ?' ह्रीमान् ने आतुरता से पूछा।

गंधकाल ने हँसकर कहा—स्त्री कभी अपने मुख से कहती है आर्य ? वह आभीरराज के विरुद्ध है। आर्य ! बड़ा सुयोग है।

ह्रीमान् का हृदय धक-धक करने लगा। वह देखता रहा। गंधकाल ने विग्रहक खेल रचा था। वह गंभीर था। एक दास ने आकर सिर झुकाया।

'क्या है ?' गंधकाल ने पूछा।

'देव ! आभीरराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं', दास ने गंधकाल से कहा।

'आता हूँ', गंधकाल ने कहा।

आभीरराज द्वार पर ही खड़ा था। वह प्रसन्न था। उसने कहा—आर्य ! तुम धन्य हो ! सौरभेयी को समझाया ? उसने ऐसा भयानक कार्य क्यों किया ?'

'देव ! मैं कहते डरता हूँ', गंधकाल ने कहा।

'अभय !' भुमन्यु ने पुकारा।

'देव ! वे वृषकेतु और बृहद्वती के समाचार से अत्यन्त उद्विग्न हैं', गंधकाल ने कहा, 'वे उन्हें छोड़ने गई हैं......मैं अधिक नहीं कह सकता। शीघ्रता करें। आप यदि यह समय चूक गये तो कण्डीरक और सौरभेयी सारी सत्ता अपने हाथ में ले लेंगे......'

'और मैं दोनों की हत्या कर दूँगा', भुमन्यु ने कहा।

आभीरराज ने खड्ग उठा लिया और वह बाहर निकल गया। गंधकाल ने एक लम्बा श्वास छोड़ा।

आभीरराज का रोम-रोम धधक रहा था। दासी कदम्ब मेखला के बुलाने से कण्डीरक आ गया था और सौरभेयी की प्रतीक्षा कर रहा था। वह झुका हुआ खड़ा था। कदम्ब मेखला सौरभेयी को सूचना देने भीतर

गई थी। आभीरराज ने जो उसे देखा तो उसे गंधकाल की बात सत्य दिखाई पड़ी। उसने पीछे खड़े होकर पूरी शक्ति से प्रहार किया। खड्ग ने कण्डीरक के सिर को धड़ से अलग कर दिया। कदम्ब मेखला बाहर आ रही थी। उसने देखा तो चिल्लाई। भय से कण्ठ रुँध गया। आभीरराज ने झपट कर उसे पकड़ कर कहा—कहाँ है वह ? बोल कहाँ है......

कदम्ब मेखला ने भय से आँखें फाड़ कर कहा—वृष......और वह मूर्च्छित हो गई। आभीराज भुमन्यु ने अपना खड्ग पोंछा भी नहीं। उसने यह भी नहीं सोचा कि उसने कितने पराक्रमी आभीरों का पीछे से, छल से वध कर दिया था। वह उफन रहा था। प्रजा का कोलाहल उसे डरा रहा था। तो सौरभेयी इतनी विषैली है ? इतनी विकराल है उसकी तृष्णा ! उसे चिंता हुई कहीं वृषकेतु निकल नहीं जाये। वह तेजी से उधर ही चला।

वृषकेतु उस समय वृहद्वती के पास खड़ा था और सुन रहा था—इसका कोई प्रतिशोध नहीं है ?

द्वार पर खड़ी पट्टमहिषी सौरभेयी ने कहा—कोई नहीं। क्योंकि तुम्हारे सौवीर पुरुष नपुंसक हैं।

वृषकेतु ने उसे देखा नहीं था किन्तु वृहद्वती ने रोकर कहा—पट्टमहिषी ! क्यों यही आभीरों का पौरुष है ?

'भाग जाओ', सौरभेयी ने कहा, 'मुझे गंधकाल ने भेजा है। भाग जाओ। सेना घिर रही है।'

वृषकेतु परिस्थिति को समझ गया। उसने तुरन्त वृहद्वती का हाथ पकड़ लिया और तीनों एक ओर भाग चले। सौरभेयी ने उपवन पार करके उन्हें अलिंद में खड़ा कर दिया। वे दोनों दौड़ कर प्रजा की गरजती भीड़ में मिल गये और फिर प्रजा का रेला सिंहद्वार की ओर बढ़ चला। सौरभेयी उन्हें जाते देखती रही। जब वह मुड़ी आग्नेय नेत्रों

से घूरते हुए उसने आभीरराज भुमन्यु को सामने नंगा रक्त से भींगा खड्ग लिये देखा। वह उसका रौद्र वेश देखकर भी डरी नहीं।

उसने व्यंग्य से कहा—यदि पार्वत्यमण्डलेश्वर मद्रविजयी आभीर-राज पाशिवाट को ज्ञात होता तो वे एक नपुंसक से अपनी कन्या का विवाह नहीं करते जो आज एक सौवीर से पराजित हो गया। धिक्कार है तुम्हें !

आभीरराज का क्रोध इतना बढ़ गया कि उसकी कनपटियों पर नसें फूल आईं। उसने कहा—नीच स्त्री ! तूने सर्वनाश कर दिया। दूसरा शत्रु भी भगा दिया ?

'प्रजा पागल हो रही थी', सौरभेयी ने कहा, 'तुम कामुक मूर्ख ! तुम आभीरों का सर्वनाश करना चाहते हो !'

'प्रजा को मैं कुचल देता, परन्तु तू......तू कण्डीरक की शैय्यागामिनी होने का स्वप्न देख रही है, नागिनी ! मैं तेरी हत्या कर दूँगा !'

सौरभेयी ने चिल्ला कर कहा—मूर्ख ! सावधान ! मैं पाशिवाट की दुहिता......

परन्तु आभीरराज का क्रोध सीमा को लाँघ गया। उसने अपना खड्ग उसके पेट में झुक से भोंक दिया और वह रक्त निकलते देखकर हँसा। उसने कहा—पाशिवाट का भी यही अंत होगा।

अभी उसने रक्त भींगा खड्ग निकाला भी नहीं था कि किसी ने गरज कर कहा—आभीर ! तूने स्त्री की हत्या कर दी। इस कोमल सुन्दर फूल को मसल डाला क्रूर ! अत्याचारी !' वह आर्य ह्रीमान् था।

सौरभेयी का शव देखकर उसका हृदय फटा जा रहा था।

'कौन ? ह्रीमान !' भुमन्यु ने कहा, 'क्या कहा तुमने ?'

'कहना नहीं है मुझे आभीर !' ह्रीमान ने कहा, 'तूने निरस्त्र स्त्री की हत्या कर दी ?'

आभीरराज को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—जानते हो इसका अपराध! इसने शोणकेतु को मुक्त किया। इसने मदनमंथिनी और सुवर्चला का वध कराया। अभी दासों और क्षत्रियों को ज्ञात नहीं हुआ है, मैंने संवाद गुप्त रखा है, परन्तु जैसे ही वे जानेंगे, विद्रोह को बल मिलेगा। और अब इसने वृषकेतु को भी छुड़ा दिया। यही नहीं, यह कण्डीरक से मिलकर मुझे भी मार डालने के षड्यंत्र में थी।

'यह झूठ है आभीर', ह्रीमान ने चिल्ला कर कहा, 'वह कण्डीरक से नहीं, मुझसे प्रेम करती थी। तूने मेरी प्रिया की हत्या कर दी। इस सुन्दरी के कारण ही तो मैंने तुझ जैसे पशु की अधीनता स्वीकार की थी। तू हत्यारा है! मैं तुझे इसका दण्ड दूँगा।'

'दण्ड देगा! सौवीर दास! तू आभीरराज को दण्ड देगा?' आभीरराज ने कहा, परन्तु ह्रीमान का खड्ग उसके खड्ग पर बज उठा था। वे दोनों देर तक युद्ध करते रहे। ह्रीमान ही अंत में विजयी हुआ। उसने आभीरराज के पेट में खड्ग घुसा दिया। आभीरराज गिर गया। तब ह्रीमान हँसा। और खड्ग पोंछ कर सौरभेयी के पास बैठ गया। आभीरराज ने देखा कि उसने प्यार से मृत सौरभेयी के होठों को चूम लिया। फिर वह व्याकुल सा उसके शव से चिपट कर रोने लगा। आभीरराज ने देखा वह सचमुच आर्त्त थी जैसे वह उसे बहुत प्यार करता था। भुमन्यु हाथ टेककर उठा और उसने दोनों हाथों से खड्ग उठा कर ह्रीमान की ग्रीवा पर प्रहार किया। ह्रीमान का चीत्कार आभीर के हास्य में डूब गया। वे दोनों शव सौरभेयी के शव पर गिर गये।

उधर से निकलते चरों ने देखा तो संवाद दुर्ग में फैल गया। अजावहा ने जब सुना तो क्रोध से पागल हो गई। आभीरों में फूट पड़ गई। कदम्ब मेखला के कथन से स्पष्ट इंगित था कि सौरभेयी की हत्या भुमन्यु ने ही की थी। मदनमंथिनी और सुवर्चला की हत्या के कारण ही भुमन्यु को यह क्रोध आया होगा। आभीरराज भुमन्यु के पक्ष के

आभीर, सौरभेयी के विरुद्ध थे और वे अब भी भुमन्यु के पक्ष में थे। गन्धकाल चुपचाप कक्ष में चला गया। क्रोष्टेय वृजिनीवान् ने कहा—देव ! अब !

'क्यों रे !' गन्धकाल ने कहा, 'तू मेरे पिता के मित्र का पुत्र है न ?'

'हाँ देव ! वे एक ही पाठशाला में पढ़ते थे', क्रोष्टेय ने कहा, 'भाग्य से हम दरिद्र रह गये, वे धनी हो गये।'

'तेरा विवाह हो गया ?' गन्धकाल ने कहा।

'नहीं देव ! कोई मुझे कन्या नहीं देता।'

'क्यों ?'

'मैं दरिद्र हूँ जो।'

'दरिद्रों का क्या विवाह नहीं होता ? कन्याएँ क्या अब धनिकों के ही घर जन्म लेने लगी हैं ?'

'नहीं देव !' क्रोष्टेय ने झेंप कर कहा, 'मैं तनिक सुन्दरी चाहता हूँ।'

'कभी अपना रूप भी देखा है ?'

'देव ! बहुत दिनों से देखना छोड़ दिया।'

'अच्छा !' गन्धकाल ने हँस कर कहा, 'विवाह करेगा ?'

'करूँगा देव ! आपकी कृपा होगी तो।'

'है, कृपा बहुत है। आभीर से करेगा ?'

'कर लूँगा देव !'

'तो जा ! अजावहा का अपहरण कर ले। इस समय छल से ले जा ! कुछ दिन बाद वह तेरी हो जायेगी।'

'देव ! आभीर मार डालेंगे।' वह डरा।

'मूर्ख ! इस समय उसे कहीं बंदिनी बना दे। फिर इनका कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो सबको एक सूत्र में बाँध सके।'

'तो देव ! मैं क्या कहूँ ?'

'कहना कि देवी ! आपके प्राण यहाँ संकट में. हैं, मेरे साथ प्रासाद में छिप रहें। अच्छा हो बाहर चलें। फिर अपराधियों को दण्ड देने पर लौट आयें। आर्य गन्धकाल व्यवस्था कर रहे हैं। .यह भी पूछना कि वह महारानी वन लेगी ?'

'पूछूँगा देव ! परन्तु ! पाशिवाट......'

'भाग !' गन्धकाल ने कहा, 'पुरस्कार ठीक है ?'

'देव ! मेरी तो इतनी स्पर्धा नहीं......'

वह गन्धकाल के पाँवों पर गिर पड़ा।

'तो फिर जा !' गन्धकाल ने कहा, 'बाहर बैठ, मैं एक पत्र देता हूँ। उसे नीवारक के पार पहुँचा दे।'

'देव ! आज्ञा शिरोधार्य !' उसने प्रसन्न होकर कहा।

'और देख,' गन्धकाल ने कहा, 'शीघ्र जाना !'

क्रोष्टेय बाहर बैठ कर अजावहा की बात सोचता रहा, पर बहुत बल लगा कर भी साहस नहीं हुआ। वह जब सोचता तब काँप उठता।

× × ×

जिस समय वृषकेतु ने बृहद्वती को घोड़े से उतारा·उस समय शोणकेतु, .सनगा, पट्टमहिषी शैखावत्या और महामात्य प्रावृट खड़े हुए थे। ओघवती का मुख आश्चर्य से फटा हुआ था। वृद्ध ने बृहद्वती को देख कर रुँधे हुए कण्ठ से कहा—पुत्री !

बृहद्वती रोती हुई उसके गले से लिपट गई। कुछ देर वे रोते रहे तभी पट्टमहिषी ने कहा—पुत्री !

किन्तु बृहद्वती धरती पर बैठ कर रोने लगी। सबने आश्चर्य से उसे देखा और देखा। वृषकेतु पाषाण प्रतिमा बना खड़ा था। किसी की भी समझ में नहीं आया कि यह हुआ क्या ?

सनगा आगे बढ़ी। उसने वृषकेतु से कहा—कुमार !

उसके स्वर की आत्मीयता सुनकर शोणकेतु चौंक उठा।

'क्या हुआ आर्य ?' सनगा ने पूछा।

'सर्वनाश !' बृहद्वती ने उत्तर दिया, 'पिता ! तुमने जिस पुत्री को इतने स्नेह से पाला था, आज तुम्हें उसी का गला घोंट कर उसकी हत्या करनी होगी क्योंकि उसका वैधव्य खण्डित हो गया है।'

वृद्ध सिर पकड़ कर बैठ गया।

'वृषकेतु !' शैखावत्या ने कहा, 'बताता क्यों नहीं ?'

वृषकेतु ने कहा—अम्ब ! मैं अपराधी नहीं हूँ। आभीरराज ने बृहद्वती को बाँध कर मुझसे अग्नि की प्रदक्षिणा करा दी। यह षड्यंत्र था। वह बृहद्वती को पराजित नहीं कर सका था।

'पुत्री !' वृद्ध ने गर्व से कहा, 'तो तूने प्रावृट के नाम को कालिख नहीं लगने दी। तूने ब्राह्मण का गर्व विदेशी के सामने खण्डित नहीं किया।' उसके नेत्रों में आँसू आ गये थे। पिता और पुत्री के सम्बन्ध की पवित्रता समझना उसी का काम है जिसके कोई अपनी पुत्री है, तभी वह उसके सम्मान की महत्ता समझ सकता है। शोणकेतु चुप खड़ा था। सनगा ने कहा—परन्तु विवाह के समय क्या आर्ये ! आप चुप ही थीं ?

वृषकेतु ने परिस्थिति समझाई। शोणकेतु के नेत्रों से रक्त छलक आया। इतना क्रूर और नीच है आभीरराज। और गन्धकाल ने सहायता की थी, यह सुन कर प्रावृट अपनी पुत्री की बात भूल गया। उसने कहा—यह असत्य है वृषकेतु !

'नहीं पितृव्य !' उसने कहा, 'यह सत्य है।'

फिर वे चिन्ता में पड़ गये। आज सबके मन में घुमड़न थी। शोणकेतु सनगा के स्वर की आत्मीयता से चिंतित था। क्या वह मुझे छुड़ाने गई थी या वृषकेतु को। सनगा सोच रही थी कि आचार्य श्रुत-श्रवा कहते थे कि गणों के ब्राह्मण कुरुपंचाल के ब्राह्मणों की भाँति उच्च

कुलीन नहीं होते। इस ब्राह्मणी ने आत्महत्या क्यों न कर ली जो अब क्षत्रिय से विवाह करके रो-रोकर दिखावा कर रही है। परन्तु सनगा कुछ बोलो नहीं। वह तो पितृव्य की पुत्री है। फिर सनगा को ध्यान आया कि यह कुलगर्व क्या ठीक है? वह तो स्वयं अज्ञात कुलशीला है!

पट्टमहिषी को ब्राह्मणत्व का अंतिम गर्व भी अब अखर गया था। क्या उनका पुत्र इतना हेय है कि वृहद्वती का विवाह उससे होने से कुछ पाप हो गया?

वृषकेतु का मन कभी वृहद्वती के क्रोध से डरता, कभी बार-बार उसकी ओर खिंचता, क्योंकि बहुत दिन से जो मन में घुट रहा था, आज एक पाप या षड्यंत्र के बहाने ही सही, पूर्ण तो हो गया, फिर क्या अब उसे झुठा देना व्यर्थ का दर्प नहीं है?

वृहद्वती अपने को पापिनी और भ्रष्टा समझ रही थी। उसे चारों ओर अंधकार लग रहा था। कभी उसे अपने ऊपर क्रोध आता, कभी आभीर पर, कभी अपने भाग्य पर। और दासी ओघवती कभी सोचती यह क्या हुआ? परन्तु वह कुछ निश्चित नहीं कर पा रही थी कि ठीक हुआ या गलत हुआ। केवल वृद्ध प्रावृट अब राजनीति की गहनता में उतर गया था। क्या यह भी गन्धकाल की चाल है? क्या आभीर अब चुप रहेगा? यह विवाह कराके उसे क्या लाभ हुआ? क्या वह हममें परस्पर ब्राह्मण क्षत्रिय विद्वेष डालना चाहता है? उसने वृषकेतु को बुलाया क्यों? अंत में उसने कहा—रो नहीं पुत्री। तेरा इसमें अपराध नहीं। जो मद्र गण में होता था, वह सौवीरों में भी प्रारम्भ हो गया और विदेशी ने उसका प्रारम्भ किया है। उठ! पट्टमहिषी!

महिषी वृद्ध के गौरव को देख कर पश्चात्ताप करती हुई रो पड़ी। वृद्ध ने कहा—उसने ब्राह्मण क्षत्रिय द्वेष के लिए यह कार्य. किया है। किन्तु उसकी असफलता इसी में है कि हम सन्नद्ध और एक होकर उसका

विनाश करें। उसने वृषकेतु की हत्या की चेष्टा की और वह इसमें भी सफल नहीं हुआ। गन्धकाल अवश्य कुछ कुचक्र कर रहा है।

'देव !' वृषकेतु ने कहा, 'उसने हमारी सदैव सहायता की है।'

वृद्ध चिन्ता में पड़ गया। वृहद्वती का मन अब फिर ग्लानि में पड़ गया था। सनगा महामात्य को आश्चर्य से देख रही थी। उसी समय कोलाहल होने लगा। सामने घोड़े पर क्रोष्टेय वृजिनीवान् अजावहा को बाँधे अनेक अश्वारोही सौवीरों के साथ आ रहा था। वे सब खड़े हो गये।

क्रोष्टेय ने उतर कर अभिवादन किया और प्रावृट को एक पत्र दिया। और कहा—आर्य ! कुमार वृषकेतु के जाने के बाद आभीर महिषी सौरभेयी की भुमन्यु ने हत्या कर दी, क्योंकि कुमार शोणकेतु को मुक्त करके उन्होंने मदनमंथिनी और सुवर्चला का सिर कटवा दिया था। युद्ध करते हुए भुमन्यु और आर्य ह्रीमान् मारे गये। आभीर सेनापति कन्डीरक भुमन्यु के हाथों मारा गया। आर्य गन्धकाल ने सूचना दी है कि आभीर परस्पर युद्ध करके नष्ट हो रहे हैं। उन्होंने देवी वृहद्वती के अपमान का प्रतिशोध लेने को सौरभेयी की भगिनी अजावहा को भेज दिया है। शेष पत्र में।

उस संवाद को सुनकर सबको ऐसा आश्चर्य हुआ जैसे वे स्वप्न देख रहे हों। वृद्ध पत्र पढ़ने लगा। उसने पढ़ कर कहा—कुमार वृषकेतु ! कुमार शोण !

'देव', दोनों ने कहा।

'गन्धकाल ने शासन सँभालने का निमंत्रण समस्त भूस्वामियों की ओर से भेजा है।' वृद्ध ने पत्र उधर बढ़ाते हुए कहा। शोण ने पढ़ा। वृष ने भी। प्रजा व्याकुल हो रही थी। तब वृषकेतु ने पुकार-पुकार कर सुनाया। सुनकर वे हर्ष से जयजयकार करने लगे।

अब अजावहा वृद्ध के पाँवों पर पड़ी थी। वृद्ध ने कहा—पुत्री ! इसका निर्णय तू ही दे !

बृहद्वती ने क्रोष्टेय की हिंस्र और कामुक आँखें देख कर कहा—'इसे तू ले जा।' क्रोष्टेय ने साष्टांग दण्डवत की।

× × ×

दुर्ग पर तूर्यनिनाद महानगर को नया संदेश दे रहा था। आर्य शिपिविष्ट वृद्ध थे। वे इस परिवर्त्तन को देख कर समझ नहीं पा रहे थे। उनकी भौं तक श्वेत थीं। श्वेत लम्बी दाढ़ी उनके वक्ष पर लटकती थी। वे अत्यन्त गर्वीली आँखों से देखते थे, जैसे अहंकार पीढ़ी दर पीढ़ी उनमें कूट-कूट कर भरा गया था। वे आर्य क्षत्रिय थे और एक बड़े भूस्वामी थे। उनके दासों में उनका नाम आतंक फैला देता था, यहाँ तक कि अन्यों के दासों के भी हृदय उनका गौरव सुन कर थर्रा जाते थे। दासों का उन्होंने जितना यथाकाय वध किया था उतना संभवतः सौवीरों में और किसी ने नहीं। जब आभीर शासन आया था, वे अपने ग्राम में चले गये थे। परन्तु आज ही वे क्षिप्रगति तुरंगों के रथ पर बैठ कर गन्धकाल के निमंत्रण पर महानगर में आये थे। वे सीधे गन्धकाल के प्रकोष्ठ में गये। गन्धकाल ने उठ कर सादर अभिवादन किया और उन्हें आसन ग्रहण कराया। वृद्ध ने गृद्ध दृष्टि से देख कर कहा—तो गन्धकाल! यह सब क्या हो रहा है?

गन्धकाल के इंगित से मंत्रणाभवन के चारों .ओर गूँगे-बहरे नियत हो गये थे। गन्धकाल ने कहा—आर्य! जानते हैं कि संकट का समय है। आभीर सत्ता से अपनी रक्षा हो ही नहीं सकती थी। स्वयं अधिकार के लिये आभीरों में वैमनस्य हो गया था। हमने आभीरों को निमंत्रित करके यहाँ के दासों और कर्मकर शूद्रों को दबाये रखने का यत्न किया था। किन्तु आभीर उतने ही से संतुष्ट नहीं थे जितना हमने दिया था। आभीरों ने दासों को बढ़ावा देकर, प्रजा का एक पूरा पक्ष ही अपने राज्य की दृढ़ नींव बना लेने का प्रयत्न किया। दासों के साहस बढ़े। क्षत्रियों

के अधिकारों पर कुठाराघात होने की पूरी संभावना हो गई। ब्राह्मणों ने तो गण की परम्परा को ही ठीक नहीं समझा है।

'तो क्या अब ब्राह्मण क्षत्रिय द्वेष मिट गया है गन्धकाल !' वृद्ध ने कहा।

'देव ! क्षत्रियों पर विपत्ति आ गई है', गन्धकाल ने कहा, 'नहीं, ब्राह्मणों में तो शक्ति नहीं, परन्तु नदियों के समृद्ध व्यापार से ब्राह्मण-द्वेषी वैश्यों की शक्ति बढ़ रही है। वैश्यों के विरुद्ध भी शूद्रों की श्रेणियाँ पहले से संगठित हो रही हैं। परन्तु अभी भी श्रेणियों और दासों का संघर्ष रुका नहीं। आज दास श्रेणियों से मोल-तोल करते हैं, और वैश्य दासों के विरुद्ध नहीं।'

'क्यों न हो। वैश्य की कुल परंपरा ही क्या ! वह दास को पाल कर इतना व्यय क्यों करे ? श्रेणियों को वह तो ठेका देता है। कम से कम से काम हो जाये, वही भला।' आर्य शिपिविष्ट ने घृणा से सिर हिलाया। फिर कहा—और गन्धकाल ! आभीरों का क्या हाल है ?

'देव अधिकांश मारे गये, कई भाग गये।'

'उनकी स्त्रियाँ ?'

'देव ! वे दासी बना ली गईं।'

'परम मंगल हुआ। होती सुन्दरी हैं।' वृद्ध को कुछ शोक-सा हुआ जैसे अब कुछ भी हो, अपने क्या काम की।

'प्रजा का अनुशासन भंग हो गया है', गंधकाल ने कहा।

'तो कुचल क्यों नहीं देते ?' वृद्ध ने झुक कर कहा।

'देव ! वह समय नहीं रहा। ब्राह्मण अपने स्वार्थ में है। वैश्य, शूद्र और दास अपने स्वार्थ में हैं। क्षत्रिय पर तो सारी विपत्ति आ गई है। प्रजा को कुचलने से सबके एक हो जाने का डर है।' 'और', गंधकाल ने कहा, 'अमात्य प्रावृट ने सौवीरों को विद्रोही बना दिया है।'

'कौन प्रावृट ! संहनन का पुत्र ?' वृद्ध ने कहा, 'उसकी माता

फलका तो गणों को पसंद नहीं करती थी। वह तो कुरुपञ्चाल चाहती थी !'

'देव ! वही प्रावृट !' गंधकाल ने कहा, 'इस समय अत्यंत धैर्य की आवश्यकता है आर्य शिपिविष्ट !'

अपना नाम सुनकर वृद्ध चैतन्य होकर बैठ गया। मंत्रणागृह की चमकती भूमि पर धूमिल अंधकार छा रहा था। इस समय वहाँ नीरवता थी। इतनी निस्तब्धता कि बाहर टीवी-टीवी करते पक्षी का शब्द सुनाई दिया।

'मैंने', गंधकाल ने कहा, 'एक काम किया है। प्रावृट को बुलाया है कि वह शासन सँभाले।'

'यह क्या किया तुमने गंधकाल ? सर्वनाश कर दिया', वृद्ध ने सिर उठाकर कहा, 'वह तो गण के पक्ष में है। केवल वही हो तो भी कुलीनों पर इतना आक्रमण नहीं होता, किन्तु वह तो श्रेणियों को भी कुछ अधिकार देना चाहता है।'

'देव !' गंधकाल ने कहा, 'विष को विष से ही मारा जाता है। यही संघर्ष है। जब अरणी रगड़ी जाती है तो अग्नि उत्पन्न होती है। यदि हममें शक्ति है तो हम सफल होंगे, यदि उनमें शक्ति है तो वे सफल होंगे। पहले गण था तब आधार केवल रक्त था। आज रक्त ही नहीं, गण का अर्थ है धन भी। धन के पीछे सब वर्ण और वर्ग चेतन हैं। वे कुलों का गण बनाकर हमारे पूर्णाधिकार छीनना चाहते हैं। उनको दूर जनकों की मिथिला पागल कर रही है कि वहाँ विदेहों ने गणराज्य बना लिया है। उन्हें रघुकुल की जगह लिच्छवि और शाक्य गण बुला रहे हैं। वे मल्ल गण चाहते हैं। और उन गणों में क्या है ? केवल क्षत्रिय शासन है। परंतु कुलों ने एकतंत्राधिकार को समाप्त कर दिया है। आर्य ! मैंने वहाँ के क्षत्रियों से कौशाम्बी में बात की थी। वे कहते थे कि यदि वे

कुलगण बनाकर क्षत्रियों का पारस्परिक वैमनस्य दूर नहीं कर देते, तो वे दासों को दबाये रखने में कभी सफल नहीं हो पाते !'

'क्या सफल हुए ?' वृद्ध ने कहा, 'वैश्यों को उन्होंने दबा लिया ?'

'इसीलिये आर्य !' गंधकाल ने कहा, 'कैसे भी हो, हमें यही एकराट् रखना होगा। क्षत्रिय जिस प्रकार परस्पर बाँट कर अधिकार रखना चाहते हैं, उससे वे कुछ दिन भले ही सफल हो जायें पर वे वैश्यों की समृद्धि को नहीं रोक सकेंगे।'

'कुचल दो गंधकाल !' वृद्ध ने कहा, 'इन सबको कुचल दो।'

'असंभव !' गंधकाल ने कहा, 'यह असंभव है।'

'फिर ?' वृद्ध ने पूछा।

'देव ! इस समय कौशल चाहिये। हमें फिर से प्रजा का विश्वास चाहिये।'

'वह कैसे होगा ?'

'आर्य ! आपका वय मेरा साथ देगा।'

'तो धर्म के लिए शिपिविष्ट प्राण दे देगा।'

'देव ! धन्य हैं। सुनकर कृतार्थ हुआ।'

'मुझे क्या करना होगा ?'

'देव ! कुणिक नीति के तो ज्ञाता हैं ?'

'हाँ वत्स ! तक्षशिला में पढ़ी थी।'

'गंधकाल जब तक्षशिला का स्नातक बना था तब कुणिक नीति का पंडित बनकर ही निकला था। मैं चाहता हूँ कि जो प्रजा प्रावृट की जय बोलती है, वह हमारा जयजयकार करे। आप प्रतिज्ञा करें कि जो मैं कहूँगा, आप राष्ट्र और क्षत्रिय धर्म के लिये वही करते रहेंगे।'

'स्वीकार है वत्स !' वृद्ध ने कहा, 'मैं इंद्र को साक्षी करके कहता हूँ।'

'देव !' गंधकाल ने कहा, 'आपकी बाल्यावस्था में इंद्र का प्रभाव

ब्राह्मणों के कारण था। अब तो श्रमणों के उपदेशों के कारण इन्द्र को नहीं मानता। अब क्षत्रिय गणों में यज्ञ नहीं करते।'

'मैं जानता हूँ, मैंने स्वयं यज्ञ छोड़ दिया है। छोड़ो इस बात को गंधकाल। ईश्वर और ब्रह्म को खोजने के लिये मुझे दूसरा जन्म लेना होगा।' वृद्ध हँसा। गंधकाल भी।

द्वार पर दण्डधर दिखाई दिया। दोनों चुप हो गये। दण्डधर ने अभिवादन किया। कहा—देव! दुर्गद्वार पर आर्य प्रावृट असंख्य प्रजा के साथ उपस्थित हैं।

गंधकाल ने कहा—स्वागत करो!

दण्डधर चला गया। तब गंधकाल ने कहा—आर्य! उठें।

'क्यों?'

'स्वागत करने चलें!'

'मैं? और उस संहनन के पुत्र का स्वागत करने चलूँ?'

'देव! अपनी प्रतिज्ञा को इतनी शीघ्रता से भूल गये?'

'तब तो मैं बड़ी गलत प्रतिज्ञा कर गया।' वृद्ध ने शोक से कहा।

गंधकाल ने मुस्कराकर कहा—देव! कार्य की अच्छाई-बुराई उसके फल में प्रगट होती है। आपने तक्षशिला में वृहस्पति को पढ़ा होगा।'

वृद्ध भूल गया था, पर उठते हुए बोला—कल की तरह याद है गन्धकाल। चलो।

द्वार पर सैनिकों का और प्रजा का सम्मिलित जयघोष हो रहा था। वृद्ध प्रावृट एक ऊँचे सोपान पर खड़ा था। सामने प्रजा थी। सौवीरों में उत्साह था। महिषी शैखावत्या के एक ओर बृहद्वती थी, दूसरी ओर सनगा। वृषकेतु और शोणकेतु युद्धवेष में अपने काले और श्वेत तुरंगों पर बैठे थे।

गंधकाल को देखकर प्रावृट के मुख पर गांभीर्य आ गया।

'स्वागत', गंधकाल ने कहा, अभिवादन करता हूँ।'

'आर्य ! मैं प्रावृट भी अभिवादन करता हूँ।'

दोनों ने खड्ग निकाले और आकाश की ओर उठाये और म्यानों में रखकर दोनों हाथों से दोनों हाथ पकड़ लिये और फिर दोनों की आँखें टकराईं। गंधकाल ने मुस्कराकर कहा—आर्य शिपिविष्ट !

उस वयोवृद्ध को देखकर सबने विनतभाल अभिवादन किया।

'कौन ?' वृद्ध ने कहा, 'प्रावृट ! संहनन पुत्र प्रावृट ! वत्स !'

प्रावृट ने झुककर कहा—प्रणाम आर्य !

'अरे पुत्र !' वृद्ध ने कहा, 'तू बाहर क्यों खड़ा है ? यह कौन है ? कौन शैखावत्या ! पुत्री ! तू मुझे भूल गई।'

प्रावृट ने कहा—आर्य ! कल तक आप सब आभीरों के अधीन थे, आज हमें निमंत्रण भेजा गया है कि हम गण का भार उठायें।

उसकी बात काट कर वृद्ध ने कहा— तो वत्स ! तू अधिकार के लिए इतना आतुर क्यों हो रहा है ? यह तो निश्चत है। आभीरों के आक्रमण के समय तुम लोग वनों में जाकर छिप गये। जिन लोगों ने आँधी में झुक कर कौशल से काम लिया और फिर जब सिर उठाया तब आँधी के पाँव उखाड़ दिये, उन्हें तू ऐसे कटु वचन कह रहा है ? सौवीर शक्ति को एकत्र होना पड़ेगा, अन्यथा वह फिर किसी विदेशी से पदाक्रांत हो जायेगी ? तू सहायता नहीं देगा ?'

प्रावृट तिलमिला गया। उसने कहा—आर्य ! वयोवृद्ध हैं। प्रजा साक्षी है कि हम वनों तक से युद्ध करते रहे। हमने सौवीर गौरव को एक दिन भी झुकने नहीं दिया। गण वही है जहाँ सौवीर सौवीर हों। सौवीर प्रजा शक्तिमय हो। सौवीर अपने शासकों को चुनें। मनुष्य जब अपने आपको धन के हाथों में बेच देता है, तब वह अपने आपको पशु बना लेता है। सौवीर भूमि में ही सौवीर दरिद्र होते जा रहे हैं।

'क्योंकि,' गंधकाल ने कहा, 'सौवीर क्षत्रिय ब्राह्मणों को कुचलना चाहते हैं, वैश्य क्षत्रिय विरोध करते हैं, श्रेणियाँ दासों को दबाती हैं, और

दास सबको कुचलना चाहते हैं।' उसने प्रजा की ओर हाथ उठा कर कहा—तुम सौवीर नागरिक हो। तुम दासों को सिर पर रखने के लिये तत्पर हो

'नहीं,' सौवीरों ने पुकार कर कहा। उस कोलाहल में एक विक्षोभ था।

प्रावृट ने गरजकर कहा—सौवीरों! समय से ज्ञान लेना सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। बोलो। तुम एकराट् चाहते हो कि गण! सौवीरों के गण में सब बराबर हैं। सबके समान अधिकार हैं। सबकी अपनी मर्यादा है।

भीड़ में से एक ब्राह्मण ने कहा—ब्राह्मणों के ऊपर क्षत्रिय हैं, यह क्या समानता है?

प्रावृट चुप हुआ। गंधकाल परिस्थिति को समझ गया। उसने कहा—सौवीर क्षत्रियो! तुम कुरुपञ्चाल की भाँति ब्राह्मणों के मिथ्या कर्मकाण्ड को चाहते हो?

'नहीं,' भीड़ गरजी। शोणकेतु के मुख पर गांभीर्य था। वृषकेतु ने तीक्ष्ण दृष्टि से वृहद्व्रती को देखा। वह देखकर सिहर उठी। सनगा ने देखा वृद्ध शिपिविष्ट आगे आ गया। उसने कहा—मंत्रणागृह में चलकर शासन का सूत्र धारण करने का समय है प्रावृट! गंधकाल!

'आर्य!' गंधकाल ने कहा।

'गण की स्थापना करो।' वृद्ध के कहने से पहले प्रावृट चिल्लाया—सौवीरों को गण चाहिये। सौवीरों को गण चाहिये!

'गण! गण की जय!!' प्रजा ने गर्जन किया। और फिर वे बार-बार जय बोलने लगे। महिषी की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने कहा—अमात्य! तुम धन्य हो! तुमने आज यह दिन दिखाया!

गंधकाल ने चिल्लाकर कहा—अमात्य प्रावृट की...

प्रजा चिल्लाई—जय!

उस जयजयकार को सुनकर सनगा चौंक उठी। वह बढ़ता ही जा

रहा था। शोणकेतु और वृषकेतु के अश्व बढ़े। उनके पीछे प्रावृट, गंधकाल और शिपिविष्ट चले। उनके पीछे सनगा, बृहद्वती और पट्टमहिषी शैखावत्या थीं। सैनिक पीछे थे। जब वे ऊँची सीढ़ी पर पहुँचे, वृद्ध प्रावृट रुक गया। उसने पुकार कर कहा—सौवीरो! उत्सव करो। गण स्वतंत्र हुआ। श्रेणियो! तुम्हारी शक्ति को गण सफल बनायेगा।

श्रेणियों ने तुमुल निनाद किया।

वृद्ध ने फिर कहा—और आर्य गंधकाल ने जो राष्ट्र का उपकार किया है, उसके लिए आभार स्वीकार करो।

शिपिविष्ट ने कहा—सौवीरो! गंधकाल की......

अब प्रजा में गन्धकाल का जयजयकार होने लगा। गन्धकाल ने दोनों हाथ जोड़ दिये और उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने भर्राये स्वर से कहा—सौवीरो! वीरभूमि की संतान! तुम्हारी गौरव की पताका युगों से आर्यावर्त्त में फहरा रही है। आज तुम फिर उठ खड़े हुए हो। तुम्हारे ही लिए मैंने बर्बर आभीर के सामने सिर झुकाया था। आज तुमने मेरी सेवा को स्वीकृत करके मेरे समस्त जीवन को गण के पवित्र ऋण से मुक्त कर दिया। अब मुझे मरने में कोई भय नहीं!

प्रजा में कभी प्रावृट का जयजयकार होता कभी गन्धकाल का। चारों ओर आवेश छा गया था।

दुर्ग पर पटहनिनाद होने लगा। कुमार वृषकेतु और कुमार शोणकेतु तुरंगों पर बैठे हुए अब गण का दीर्घ झंडा पकड़े घोड़ों को भगाने लगे और वे दुर्ग के प्राकार पर चढ़ गये। घोड़ों पर खड़े होकर उन्होंने आभीर का झण्डा उतार कर नया झंडा गाड़ दिया।

महानगर भीषण जयजयकार से हिलने लगा। सनगा के नेत्रों में शोणकेतु अब भव्य सा दिखाई दिया। जब वह लौटकर उसके पास आया तो सनगा ने लज्जा से आँखें फेर लीं। श्रमणों के साथ रहा शोण इसे

अपनी उपेक्षा समझ कर पीछे हट गया। सनगा समझी कि कुलगर्व उसे हटा ले गया है। बृहद्वती अब भी गंभीर थी।

आर्य गंधकाल चला गया। परन्तु शीघ्र ही वह लौट आया। उसने कहा—आर्य प्रावृट! प्रजा आपकी एक विशाल मूर्ति निर्मित करके पण्य-मार्ग पर स्थापित करना चाहती है। आपने प्रजा को मुक्त किया है।

बृहद्वती के नेत्र चमक उठे। वृद्ध प्रावृट ने कहा—नहीं आर्य! अभी मैं जीवित हूँ......वह हँस दिया।

गंधकाल ने महिषी की ओर देखा। महिषी ने कहा—आर्य गंधकाल, आप तुरन्त आज्ञा दे दें।

प्रावृट ने कहा—किन्तु पट्टमहिषी!

महिषी ने कहा—आर्ये कहो आर्य! ·गण में कौन महिषी! कौन अमात्य!

सब हँस दिये। शोणकेतु ने कहा—आर्य! मूर्ति अवश्य बनेगी!

'बनेगी!' सनगा चिल्लाई।

जब गंधकाल लौटा तो राह में शिपिविष्ट ने पूछा—यह क्या आर्य! इतना गौरव? क्यों?

गंधकाल ने आगे बढ़ कर कहा—आर्य! पूछें नहीं। कुणिक की यही नीति थी कि भविष्य का गर्भ बड़ा भयानक होता है।

कुछ भी हो गंधकाल ने सबको पराजित कर दिया था। अभी वह अपने कक्ष में आकर बैठा ही था कि क्रोष्टेय वृजिनीवान् ने रोते हुए उसके पैर पकड़ लिये।

'क्या हुआ,' गंधकाल ने कहा।

'देव!' क्रोष्टेय ने विक्षोभ से कहा, 'क्षत्रियों ने मेरी पत्नी को मुझसे छीन लिया और अनेकों ने उससे बलात्कार करके उसे मार डाला!'

'तेरी पत्नी!' गंधकाल ने कहा, 'तेरा विवाह कब हुआ?'

'देव ! अजावहा......

गंधकाल ठठा कर हँसा। कहा—मूर्ख ! आभीरी के लिए रोता है ? वह तो प्रजा की प्रतिहिंसा है। आज वह इतना हँसा कि क्रोष्टेय अवाक् मुँह फाड़े उसे देखता रहा। उसकी समझ में नहीं आया। गंधकाल का हर्ष उसके रोम-रोम में स्फुरण कर रहा था।

वृद्ध प्रावृट आज फिर दुर्ग में लौट आया था। एकांत में बृहद्वती पिता के चरणों पर बैठ कर फूट-फूटकर रोने लगी। यही दुर्ग था जहाँ उसने बाल्यावस्था व्यतीत की थी। यहीं उसका विवाह हुआ था। यहीं वह विधवा बन कर लौटी थी। यहीं वह बंदिनी रही थी और उसका अधार्मिक विवाह हुआ था। आज वहीं वह फिर लौटी है। आभीर ने उसका अपमान किया। आभीर तो मिट गया, परन्तु अब बृहद्वती क्या करे ? नहीं, वह विधवा थी और विधवा बनी रहेगी। वृद्ध प्रावृट उसकी व्यथा को समझ रहा था। परन्तु फिर भी वह चुप था।

'पिता ! मैं क्या करूँ ?' बृहद्वती ने रोते हुए कहा।

वृद्ध कुछ नहीं बोला। केवल प्रकोष्ठ में घूमता रहा। उसने आकाश की ओर देखकर कहा—यह क्या कर्म का फल है इन्द्र ? देवता यह क्या है ? क्या यह......

उसका स्वर घुट गया। फिर उसके नेत्र भीग गये। उसके आँसू उसकी दाढ़ी पर बह आये। पर वह जैसे कहना चाह कर भी कुछ कह नहीं सका। बृहद्वती का रुदन अब धीमा हो गया। द्वार पर महिषी दिखीं। पिता और पुत्री ने देखा। महिषी आगे बढ़ीं। उन्होंने बृहद्वती का सिर स्नेह से बैठकर सूँघा और फिर उसका मुँह अपने वक्ष में छिपा लिया। कहा कुछ नहीं। केवल सांत्वना के रूप में सिर पर हाथ फेरती रहीं। वृद्ध बैठ गया।

कुछ देर बाद उन्होंने पुकारा—सनगा !

'देवी !' बगल के प्रकोष्ठ से उत्तर आया और सनगा ने प्रवेश

किया। वह अब बहुमूल्य वस्त्र पहने थी। महिषी ने उसे वह वस्त्र पहनाये थे। पहन कर सनगा को संकोच सा हो रहा था। उसे तो दुर्ग और प्रासाद में स्वच्छंदता से घूम कर सब को अपना कहने में ही लज्जा सी आ रही थी। वह बार-बार दर्पण में देखती और झिझक जाती। यहाँ अनेक दास थे, दासियाँ थीं। स्वामित्व जागा था। सनगा को याद था कि ग्राम में भी दास थे। परन्तु वे यहाँ के दासों की भाँति नितांत पशु नहीं समझे जाते थे।

कहा—आज्ञा !

'ले ! अपनी भगिनी को समझा !' महिषी ने कहा। उन्होंने महामात्य को इंगित किया। दोनों उठ कर चले गये। उनके जाने पर वे दोनों अकेली रह गईं। बृहद्वती रो रही थी। सनगा सोच रही थी कि क्या कहे कि द्वार पर वृषकेतु दिखाई दिया। बृहद्वती ने देखा। सनगा उठ कर जाने लगी किन्तु बृहद्वती ने उसे पकड़ लिया। वृषकेतु चला गया। उसने जाकर शोण को भेजा। शोण ने मस्ती से प्रवेश करके कहा—अरे ! तुम रो रही हो भ्रातृजाया ! सारा महानगर उत्सव का आयोजन कर रहा है।

'तुम इतने कठोर और निष्ठुर हो कुमार !' बृहद्वती ने आँसू पोंछ कर कहा, 'तुम नहीं समझते मेरा अपमान हुआ है !'

वह सीधी बैठ गई। शोण घूमता रहा। सनगा उसे एकटक देख रही थी। शोणकेतु को वह दृष्टि अच्छी लगी। सनगा ने इंगित किया कि इससे कुछ और कहो न ?

शोण ने कहा—अपमान ? यदि तुम अपने को बहुत श्रेष्ठ और हम लोगों को नीच मानती हो तो निस्संदेह तुम्हारा अपमान हुआ है। यही ब्राह्मण संस्कार तुममें अवशिष्ट हैं। किन्तु गणों में सदा से ही क्षत्रिय और ब्राह्मण समान रहे हैं। क्षत्रिय ही पहले होता, अध्वर्यु और यजमान होते थे। गण के सब ब्राह्मण तो अन्य राज्यों की भाँति यज्ञ और होम

भी नित्य नहीं करते। जानती हो, यदि तुम कुरुपञ्चाल में जाओ तो वहाँ के अभिमानी ब्राह्मण तुम्हें अपने पुत्र के लिए स्वीकार नहीं करेंगे। तुम किस परम्परा में अपने वैधव्य को गौरव बनाना चाहती हो ? सौवीरों में ब्राह्मणियाँ पहले देवर को पति बनाती थीं। मद्र में और सिंधु में अब भी यही परम्परा है। वाल्हीक, कपिशा, गांधार, उत्तर कुरु और सुमेरु तक स्त्रियाँ माता बनने में गर्व का अनुभव करती हैं। फिर हम क्या कुलीन नहीं हैं ?

बृहद्वती फिर रोने लगी।

'छिः,' शोणकेतु ने कहा, 'रोती हो भ्रातृजाया ! क्या वृषकेतु वीर नहीं ?'

बृहद्वती उसकी निर्ममता से रिस गई। सनगा ने समझा और कहा—कुमार !

इंगित था चुप रहो। परन्तु शोण कहता रहा—तुम गण क्यों चाहती हो बृहद्वती ? गण क्षत्रियों का शासन है। दासों, श्रेणियों और श्रेष्ठियों का नहीं। क्षत्रिय ब्रह्मा की भुजाओं से संसार में पैदा हुए हैं। उन्होंने ब्राह्मण से पृथ्वी को जीता है।

सनगा ने कहा—कुमार ! आचार्य श्रुतश्रवा कहते थे कि ब्राह्मणों ने पृथ्वी क्षत्रियों को दान दी है।

'झूठ है,' शोण ने कहा, 'आज ब्राह्मण दान लेते हैं, देते कब हैं !'

'यह झूठ नहीं है,' सनगा ने कहा, 'क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने शूद्रों और वैश्यों को दबाये रखने के लिए संधि की थी। परन्तु ब्राह्मण सर्वोपरि है, आचार्य श्रुतश्रवा कहते थे।'

'तुम कौन हो ?' शोण ने पूछा।

सनगा ने अटक कर कहा—क्षत्रिय !

'कौन गोत्र ?' बृहद्वती ने पूछा।

'गोत्र ?' श्रोण ने कहा, 'गोत्र गणों के क्षत्रियों के नहीं होते भ्रातृजाया ! तुम भूल गई ? गोत्र जो ब्राह्मण पुरोहित का होता है वही कुरुपञ्चाल के क्षत्रिय अपना भी बताने लगते हैं। पूछो, कौन कुल ?'

सनगा का मुख रक्तिम हो गया। वह कुछ न कह सकी।

'तो क्या तुम अज्ञात कुलशीला हो ?' वृहद्वती ने पूछा। सनगा सिर नहीं उठा सकी। उसकी आँखों के सामने एक अँधेरा सा छा गया। शोण क्या कहेंगे ? अब क्या वे उसे कभी देखेंगे भी। किन्तु शोण ने कहा—कुल ज्ञात नहीं है, परन्तु शील तो है ? भ्रातृजाया ! श्रमण कहते हैं कि मनुष्य के कुल से ऊपर उसका कर्त्तव्य और शील है।

सनगा की आँखों में आँसू आ गये। उसने झुक कर शोण को प्रणाम किया, जैसे आज युग-युग की साधना सफल हो गई थी। शोण के नेत्रों में इस समय एक अपूर्व करुणा थी जिसे देखकर सनगा की इच्छा हुई उसे ऐसे ही जीवन भर देखा करे। देखा करे !

शोण उठा। वह चला गया। सनगा ने कहा—भगिनी ! क्यों इस जीवन को व्यर्थ नष्ट करती हो। यह वर्णदम्भ तुम्हें और क्या देगा ?

'तू तो कहेगी ही !' वृहद्वती ने कहा, 'तेरा पिता कौन था ?'

सनगा नाम नहीं बता सकी। कहा—पितृव्य जानते होंगे।

वृहद्वती हँसी। निर्मम हास्य। सनगा का हृदय छलनी हो गया। वह काँप उठी। अपमान से मुँह काला पड़ गया। वह वेग से उठी और भागी। उसने प्राङ्गण पार किया और दौड़ कर वृद्ध प्रावृट के पाँव पकड़ लिये जो बैठा भूर्जपत्र पर कुछ लिखता हुआ प्रकोष्ठ में अकेला था। परन्तु वह यह नहीं देख सकी कि प्रकोष्ठ के द्वार पर अब एक और मनुष्य आ गया था। वृद्ध प्रावृट को ज्ञात हो गया। सनगा ने उसी आवेश में पूछा—पितृव्य ! मेरे पिता कौन हैं ! कौन हैं ! मेरे पिता ! कौन है मेरी माता ! बताइये पितृव्य ! बताइये !

उसका वह तीखा पुकारता हुआ शब्द जाकर वृद्ध के मुख से बार-

बार टकराया। उस समय शोण आगे आ गया। सनगा को फिर भी ज्ञात नहीं हुआ। वह फिर चिल्लाई—पितृव्य ! क्या मैं किसी कुलटा वेश्या की पुत्री हूँ ? क्या मेरा पिता कोई चाण्डाल था ? क्या मैं किसी जघन्य कुलाङ्गार की पुत्री हूँ ?

वृद्ध फिर भी नहीं बोला। सनगा पागल सी चीख उठी—नहीं बताते ? उसकी आँखें आवेश में फट सी गईं। वह पुकारती रही—नहीं बताते !......मैं......मैं किसी की जारज पुत्री हूँ......

और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। वृद्ध गंभीर बैठा रहा। शोण स्तब्ध खड़ा रहा। कुछ देर में सनगा चैतन्य हुई। वह चिल्लाकर रो उठी। उसने अपने वस्त्रों को फाड़ दिया। उसका वक्ष खुल गया, उसके फटे वस्त्रों में से वह प्रायः नग्न दिखाई देने लगी। परन्तु उसे ज्ञान नहीं था। उसने केशों को नोंच लिया और दोनों हाथों में मुँह छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसने अपने मुँह को दोनों हाथों से बार-बार पीट लिया। और फिर वह चिल्लाई—नहीं, नहीं, मैं नहीं रहूँगी। मैं पतिता बनकर संसार में नहीं रह सकती ! मैं नहीं रह सकती। वह उठ कर भाग चली। वृद्ध फिर भी पत्थर-सा बैठा रहा। सनगा दुर्ग के प्राकार पर चढ़ कर ज्योंही कूदने को हुई, किसी ने उसे पीछे से पकड़ लिया। 'सनगा !' वह चिल्लाया।

'छोड़ दो मुझे', सनगा ने पुकारा, 'मुझे छोड़ दो, मैं अपवित्र हूँ......मुझे मर जाने दो।'

किन्तु पुरुष ने उसे खींच कर अपने वक्ष से लगा लिया और उसके गाल पर अपना गाल रख कर कहा—ऐसा न कहो सनगा ! ऐसा न कहो। मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकता। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।

उसने अत्यन्त स्नेह से उसके गाल, आँख, मुख, मस्तक, केश एक-एक करके सबको चूम लिया। सनगा ने देखा, शोण था। वह फफक

कर रोने लगी। शोण ने कहा—क्या हुआ तुम किसीकी पुत्री हो सनगा। तुम किसी की न सही, परन्तु तुम मनुष्य तो हो। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

सनगा ने आँखें बंद कर लीं और कहा—तो मैं पापिनी नहीं हूँ?

'नहीं, सनगा', शोण ने कहा, 'नहीं! तुम्हारा इसमें अपराध नहीं है।'

सनगा ने आँखें बन्द करके ही कहा—तुम मुझसे घृणा तो नहीं करते! संसार कुछ कहे, मुझे चिन्ता नहीं। तुम तो मुझसे घृणा नहीं करते?

'नहीं सनगा? श्रमण कहते थे कि जन्म से सब प्राणी समान हैं।'

शोण ने उसका मुख चूम लिया।

सनगा ने आँखें खोल दीं। उसे परिस्थिति का भान हुआ। अपने नग्न वक्ष को देख वह लज्जित हुई। उसने शोण के वक्ष में उसे छिपा कर कहा—क्या करते हो? कोई देख लेगा!

× × ×

आधी रात की निस्तब्धता को भंग कर कहीं वृक्ष पर अधीर कोकिल पुकार उठी। उसके स्वर में एक विह्वल कर देनेवाली मादकता थी जो पावस के आगमन से और भी सुलगन भरी सी लगती थी। कदम्बों के रोमिल पुष्पों की गंध से आप्लुत जो पवन भींगा-भींगा सा चल रहा था, वह इस आह्वान को सुनकर विभोर होकर झूमने लगा और कभी-कभी बादलों के पीछे सर्पिणी सी कौंधती बिजली को पकड़ने के लिए भाग चलता। बृहद्वती शैया पर उठ कर बैठ गई। कभी-कभी द्रिमद्रिम करके मेघ-गर्जन दुर्ग के चारों ओर के कान्तार में गूँजने लगता था। उस समय महानद सिंधु के ऊपर लोटती वायु वन के सघन वृक्षों की छाया में चमक उठते, पानी पर जाकर झिल-झिल ध्वनि करती और सिरस वन और ढेंक की सी

रूपराशि वाली नदी की धारा को देखती और फिर प्रचण्ड धारा के उद्दाम गर्जन को सुनकर फिर दुर्ग की नीरवता में लौट आती।

बृहद्वती ने देखा सनगा सो रही थी। वह बिना आहट किये ही प्रांगण में आ गई। आकाश इन्द्र नीलमणि का सा गम्भीर हो रहा था। कभी-कभी इन्द्र का चाबुक छिटकता तब विद्युत कौंधती और जब मातलि घोड़ों को दौड़ाता तो पहियों की गड़गड़ाहट सुनाई देती और मेघ गर्जन सुनाई देता। कभी-कभी जुगनू छिटककर उड़ते और फिर भींगी पावस की अँधेरी में चमक कर पेड़ों की आड़ में खो जाते।

सनगा की आँख खुली। बृहद्वती द्वार पर दिखाई दी। इस समय बरसाती पानी से फैलकर जंगली नदी नैऋ`ती की फुंकार प्रासाद के पीछे ही सुनाई दे रही थी। सौवीर कुलों के तरुण और तरुणियाँ आपानक के लिए वहीं जमा थे। वे रावटियाँ डाले पड़े थे। अखण्ड आनन्द चलता। सनगा दबे पाँव उठी और पास आई। बृहद्वती ने अब द्वार पार किया और बाहर आकर दूसरे प्रांगण में सोचने लगी। उसके पाँव नंगे थे। वह रात्रिवेश में थी। घुटनों तक का वस्त्र पहने थी, और एक उत्तरीय बाँये कंधे से वक्ष पर ढँक कर कटि पर खोंस लिया था। उसने केशों को उठाकर ऊपर बाँध रखा था। इस समय उसके नेत्रों में कठोरता नहीं थी। उसके स्निग्ध किन्तु सुगठित सुमांसल स्कंध और उसकी लम्बी नाक उसके चिंतित मुख को एक नया ही रूप दे रहे थे।

बृहद्वती बगल की प्राचीर की आड़ करके एक गुप्तद्वार से बाहर निकल गई। सनगा नहीं देख सकी। वह लौटी तो सामने शोणकेतु को पाया जिसने कहा—तुम यहाँ हो आर्ये ! मैं तुम्हें कब से ढूँढ रहा हूँ।

'क्या कहते हैं आर्य !' सनगा ने झेंपकर कहा, 'धीरे बोलिए न ! यह समय मुझे ढूँढने का था ?'

शोण हँसा। कहा—चलो नैऋ`ती पर सौवीर एकत्र हो रहे हैं।

'वहाँ ?' सनगा झेंपी।

'हाँ-हाँ।' शोण हाथ पकड़कर खींच ले चला।

बृहद्रती ने देखा चारों ओर अंधकार था। संभवतः पशु भी सो रहे थे। पथों पर दूर कहीं कुत्ते भूँक रहे थे। बृहद्रती चलते-चलते ठिठक गई। उसने देखा एक प्रकोष्ठ में अब भी दीप जल रहे हैं। उसने पहचाना। वह वृषकेतु था। पक्की भीत पर बृहद्रती ने दोनों हाथ टेक दिये और अपना चिबुक उस पर रखकर देखने लगी। वृषकेतु दीपालोक में गम्भीर खड़ा था।

'बृहद्रती!' मन ने कहा, 'लौट चल। आधी रात की वेला है। कोई तुझे यहाँ वृषकेतु को ऐसे देखते हुए देखे तो। वह चलने को ज्योंही मुड़ी उसकी दृष्टि अचानक बगल के मदार वृक्ष पर पड़ी जो भीत से सटा ही खड़ा था। वह मुस्कराई। उसने वृक्ष पर पाँव धरा और चढ़ गई। अब प्रकोष्ठ में वृषकेतु ने संभवतः बाहर देखना प्रारम्भ किया था। प्रांगण में प्रहरी थे। भीतर अलिंद में कोई नहीं था। बृहद्रती निश्चिन्त थी। उसने देखा। हठात् वृषकेतु रुक गया। उसने अपने हाथ की पट्टी खोल दी और फिर अपना घाव देखा। उसे देखता रहा, देखता रहा। और फिर बृहद्रती ने देखा कि उसने अपने घाव वाला हाथ फिर दीप की शिखा पर लगा दिया। हाथ जलने लगा क्योंकि अब वृषकेतु के मुख पर असह्य यंत्रणा दिखाई देने लगी। कुछ क्षण बाद उसने हाथ हटा लिया और फिर उसे बाँध लिया। बृहद्रती का मन थर्रा गया। उसे लगा वह मूर्च्छित हो जायगी। उसने डाल को पकड़ कर उस पर सिर रख दिया।

क्या यह सब मेरे कारण है? तो क्या वह हाथ को नित्य ही ऐसे जला लेता है? कभी कुछ कहता नहीं। क्या वह प्रेम करता है? या वह घृणा ही है! बृहद्रती निश्चित् नहीं कर सकी। पर हाथ का जलाना तो कोई सरल बात नहीं थी। वेदना का वह रूप देखा और उसने अपने मन की तहों को खोजने का यत्न किया, किन्तु।

क्या वह उसके प्रति!

विचार आया और चला गया। आज नहीं। वृषकेतु सदैव से ही उसकी ओर आकर्षित है। किन्तु यह दण्ड वह अपने आपको क्यों दे रहा है ? क्यों जला रहा है वह अपना हाथ। यह अपनी विफलता के प्रति उसका पश्चात्ताप है या मेरे अपमान का बदला लेने की प्रतिहिंसा उसमें जाग रही है ?

वह सोच नहीं सकी। वह कक्ष में आ गई। आकर देखा सनगा नहीं थी। कहाँ गई ? इस समय वह कहाँ जा सकती है ? तो क्या वह जान गई है कि बृहद्वती भी कहीं चली गई थी ? क्या सोचती होगी कि वह कहाँ चली गई है।

बृहद्वती को लगा वह बहुत हीन हो गई है। क्या सनगा ने यह तो नहीं समझा कि मैं वृषकेतु को देखने आई थी। क्या जानें वह मेरा पीछा ही तो करने नहीं गई है ?

बृहद्वती उठी और फिर उसी पथ पर जाकर ढूँढ आई। किन्तु सनगा नहीं मिली।

वह शैय्या पर लेट गई। उसने सोने का प्रयत्न किया किन्तु वह सो नहीं सकी। जितना ही भूलने का यत्न करती उतना ही उसे याद आता।

अब मन थक सा गया। दुख ने उसे इतना व्याकुल कर दिया कि वह दुख से पराजित हो गई। क्या करे ? न यौवन का सुख है, न प्रेम का। और फिर ऊपर से लांछन और है, क्या यह भी कोई जीवन है ? वह विधवा ही तो है। तो क्या वह इस जीवन में रोने भर के लिए है ? क्या वह इस नये विवाह का कोई उपयोग नहीं कर सकती ? किन्तु यह वह क्या सोच रही है ? क्यों नहीं सोच सकती ? वृषकेतु कितना गम्भीर है। इतने दिन तक जो आग उसने अपने हृदय में पाली है। वह क्या कुछ नहीं ? उसके पीछे क्या कम सौवीरिनें लगी थीं ? सुकुंडला और मतिनारी को तो वह भी जानती है। वह यह भी जानती है कि श्रेष्ठि प्रियदत्त जब श्रावस्ती गया था तब उसकी चौथी स्त्री पिञ्जरका ने वृषकेतु को बुलाया था

एकांत उद्यान में बहुमूल्य मणियों के हार अपने गले से उतार कर उसके गले में पहनाते हुए कहा था कि मुझे मेरे जीवन का सुफल दो—तब वृष-केतु ने क्यों अस्वीकार कर दिया था ?

क्योंकि वह किसी को प्यार करता था। प्यार! किसे ? उसे ही। परन्तु उसने आज तक कहा क्यों नहीं। वृहद्रती जानती है। कैसे ? क्योंकि प्रेम भरे नेत्र छिपाये छिपते नहीं। परन्तु वृषकेतु तो ऐसा दिखाने का यत्न करता है जैसे उसके जीवन में सब कुछ है। उसे किसी की कमी नहीं। फिर वह हाथ क्यों जला रहा था ? क्योंकि वह महामात्य प्रावृट का सम्मान करता है, वह उनके हृदय को कभी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता। इसीलिये उनकी पुत्री के प्रति प्रेम एक दुखद शूल बन कर उसके हृदय में चुभ गया है। जब वेदना उसे बाहर खींचती है तो क्यों वह फिर उसे भीतर ही गाड़ देता है। ताकि किसी को ज्ञात नहीं हो।

जब वह अपने दुख को पीकर रह सकता है तब वृहद्रती क्यों नहीं रह सकती ? क्या यह जीवन सचमुच घुट-घुट कर मर जाने के लिए ही है ? घुटघुट कर......

वृहद्रती रोने लगी। उसका हृदय टूक-टूक होने लगा। रोते-रोते मन फफक उठा। चारों ओर व्यापक सृष्टि है, किन्तु उसको सांत्वना देनेवाला कौन है ? वह क्यों तड़प रही है ? ऊष्मा का श्वास अब उसे अर्द्ध विक्षिप्त सा किये दे रहा है, वह फिर रो रही है।

उस समय विपिन में बाँसुरी बजने लगी। उसकी कोमल स्वर लहरी आत्मा के उन्निद्र भावों को जगाने लगी। वन में दूर-दूर तक वह करुण और सरस ध्वनि गूँजने लगी। उस स्वर में वही मादकता थी जो दूरागत समीरण की मनोहर प्रतिध्वनि में भरी सुरभि झकोर लाती है। पेड़ों ने जैसे अँगड़ाई ली और अंधकार के झीने पट खोल कर मंदिम ज्योत्स्ना धरा पर आकर पत्तों की छाया की शैय्या बनाने लगी। विजन में वह मंदिम परन्तु प्राणों को व्याकुल कर देने वाला स्वर धीरे-धीरे झूमने लगा

बृहद्वती की आत्मा आज स्वयं वंशी हो गई है। मन का प्रत्येक शून्य रंध्र अपने ही जागरण में विसुध होता चला जा रहा है। दूर टीलों पर राग अब रागनियों की बाँहें पकड़ कर नाचने लगे हैं। रात के महकते फूलों की गंध बनकर कुहुक की वासना जागरित करता हुआ वह स्वर आज कान्तार के रोम-रोम में बींधा जा रहा है जैसे फूटती हुई उषा का स्वर्णतार पहले झनझनाया और फिर प्रशांत अतलांत जल के निम्नतर स्तरों को छू-छूकर हल्के-हल्के कंपन जगाने लगा। बृहद्वती के अधमुँदे नेत्रों में विस्मृति छा गई। यह वही आत्मविस्मृति थी जो हिमगिरि पर फिसलते समय रजत चंद्रिका के सीपी से पंखों में उलझ जाती है। कानों की तृष्णा तितली बन कर रागों के फूलों पर उड़ने लगी, कभी प्यास मिटाती, कभी अवरोहन की ओस के मोती और हीरकों पर प्रभात समीर की सांत्वना का मनोमुग्ध स्पर्श डोल जाता, कभी अतीन्द्रिय बीजरूपिणी चेतना कमलवन के गंधालस माधुर्य पर आत्मा का गौरव बिछाने लगती। उस स्वर से द्रुमराजि पर बैठे हुए पक्षियों की नींद टूट गई और मयूर ने ग्रीवा झुका दी। मृग और मृगी पास आ गये और सुदूर, बहुत दूर, और भी दूर जहाँ तक दृष्टि जाकर लय हो जाती है, जहाँ आकाश का प्रशस्त वक्ष पृथ्वी के उन्नत पयोधर पर विश्राम करता है, वहाँ तक स्वर का आवर्त्तन होने लगा, जिसे सुनकर, सतम से परे का वह सम्मोहन, जो जड़चेतन को हँसता-रुलाता अपने आपको अपने भीतर स्थिर करके अपनी तन्मयता में खो देता है, आज दूर को पास, और निकट को आत्मसात करता चला गया।

और जिस समय आरोहण मधुरिमा ने थिरक कर नीहारों से भींगे पल्लवों पर अपना पाँव धरकर तुरन्त संकोच से हटा लिया, वृक्ष ऐसे उन्मत्त से काँप उठे जैसे किसी सुन्दरी के स्पर्श से विलासी की धमनी-धमनी में पुलकाकुल रोमांच हो आया हो। पुंस्कोकिल का दाह आज शांत हो गया। वेदना के भारालस परिमल परिमलवाही घ्राण को लुटा कर कुसुम हँस दिये। संगीत का निरन्तर झरता वह रजत निर्झर समय के गिरिराज से झर-झर

झरता रहा और रेशमी दुकूलों की सरसराहट सा समीश्र आकाश के चषक में नक्षत्रों की भाँति उफन उठा जैसे अनुभाव के फेन छलक आये हों।

वादलों में झलकते सुघर चंदा की मंदिम चाँदनी उसके कटीले प्यार से ढलने लगी मानो वह कह रही थी कि मैं हूँ यह प्रतिध्वनि हूँ जो आकाश के गम्भीर श्याम में से लौटी हूँ। मैं लाज भी हूँ, मैं मुखर भी हूँ, यह दोनों मेरे ही रूप हैं। आज अपने अंतस को खोलकर वाह्य की परिधि सीमा का अंकन कर दो। मेरा गुह्यमौनरहस्य क्षण भर प्रगट हुआ है, एक झाँकी देकर यह शीघ्र ही लय हो जायगा। ओ निराश पांथ, मन से निहार कर हार जा, तुझे पंथ का अंत नहीं मिलेगा, ओ भ्रमर तू कितना भी पुकार ले किन्तु पुष्प नहीं खिलेगा, क्योंकि अभिव्यक्ति की चेतना आज लज्जा को अनुभूति बनाकर मुखर हो उठी है, वर्त्तमान बनकर अभूत का व्यक्ति आज आनन्द में छिप गया है।

बज रही है वही सकरुण भ्रान्ति, विश्रांत, जो शांति नहीं है, जो भीषण क्रान्ति नहीं है, न वह आत्मयातना की शृंखलाओं की झनझनाहट है। अहे पथिक ! वह सतत पथ की निरति है, उपरांति है। एक ही मार्ग की अनेकों मंजिलों का रूप है; अवस्थिति ऐसे गहरा रही है, जैसे वह गहरे कूप में गिर गई है। लय की शरीरी ज्योति का एक ही निस्तार है, रूप का अवरोध ही उसकी मुक्ति है। मध्यमा में आदि की चेतना बंद हो गई है, किन्तु अंत की साधना अभी भी स्वयमेव निस्तंद्र है।

आज चराचर की व्याप्ति अपने आप में अपूर्ण हो गई है, आज व्याप्ति की चरमावस्था का रूप बंधन से भयभीत नहीं है, मुक्ति का पंथ नहीं है, आज जहाँ बंधन है वहाँ मुक्ति है, गरुड़ और सर्प की अदेखी प्रीति सा यह रहस्य, विधाता का लेखा पूर्ण कर, सत्य बन गया है। शून्य की व्यर्थता, भूत की व्यर्थता नहीं है, दोनों की सीमा में विद्युत की गति है, और वही उन्हें असीमित बना रही है।

सुन्दर सुहाने स्वर विखरते चले जा रहे हैं, जैसे अंधकार में भटकता

प्राणी आलोक में बढ़ता चला जा रहा है। जीवन्त प्यार देता हुआ, यह स्वर यातना का प्रतिकार चाहता है। सुहागिनी की माँग का स्नेह, या मुस्कराते शिशु की मुस्कराहट सा, स्मृति के डोरे में मौन रूप के मोती बाँधता हुआ, सुलगती हुई वेदना को रिझाकर यह स्वर खंडहरों को जैसे नया घर बनाये दे रहा है। रात्रि के अधरों पर से ज्योत्स्ना समेट कर, नई भोर की हेम छाया भर कर, नई कोपल की मांसल सिहरन भरा यह स्वर वायु की मखमली काया को तृप्त करता बहता चला जा रहा है। आज एक क्षण में युगों का संघट्ट बन रहा है, आज अनेक युग यहाँ एक क्षण में लुटे जा रहे हैं। पराजय की गरिमा ने आज विजय के अहंकार को मिटा दिया है।

आज बंधन कटते चले जा रहे हैं। जगत का सत्य पथ चमक रहा है। दृष्टि को प्रत्येक पल पर ढँक कर आवरण जो निरंतर बढ़ रहे थे, अदेखे की भीति को वर्द्धित कर रहे थे, वे पूर्ण की आनन्द चेतना का आभास पाकर यातना को छोड़कर हर्ष के अभिराम उपशम की ओर बढ़ रहे हैं।

माया मोह है, काया स्नेह है। यही चेतना के सब बहिरंग हैं। जीवन और मरण के द्वारों में ही मरण और जीवन की सतत गति है, और यह सब अंतरंग हैं। एक लज्जा काँपती है, तब बंधन बाँधती है स्नेह की अणिमा, किन्तु उज्ज्वल सत्य सबके पार रहता है, और वह अंतरंग नहीं, पूर्ण रंग है। कल्पना का आधार उसे अतीन्द्रिय बनाता है, जैसे अदृश्य स्पर्श से ही समीरण मनोहर होता है। शाश्वत सुख, जो अपरिमित है, वह दृष्टि में नहीं, अनुभूति में है, प्राण का आलोक निरंतर उससे ही ज्योति पाता है। उनीदे नेत्रो! देखो। उसे देखो जिसकी प्रतिच्छाया स्वयं मुक्ति का साधन है।

दीप के स्नेह से ही बाती सुलग कर ज्योति भरती है। अंधकार की वासना बावली होकर विवश हो गई है, वह उसे नहीं बुझा सकती,

नहीं बुझा सकती। ओ मौन रहस्य! स्वर बनकर फूट मत, मेरे भीतर उतर जा! तू स्वयं निरुपम है, तेरे पाश मुझे ग्राह्य हैं। हे सुदानी! मुझे अपना चषक भर लेने दे। अब यह तृष्णा अनजान न रह जाये। आज जीवन में स्फुरित होकर जीवंत यौवन हँस रहा है, जैसे सिंधु की उत्ताल ऊर्मियों में पड़े सत्ता के जाल में ऊर्द्ध श्वास मत्स्य आकर फँस गया है। अब कोई भी वेदना उसको रुलाकर भुला नहीं सकती।

आत्मलय हो रहा है। आत्मलय हो रहा है। दूर का स्वप्न आज पास आकर पलकों में भर गया है। स्वप्न की सी स्मृति आज अधरों पर हँस उठी है। आज आत्मजय हो रहा है। स्निग्ध फेनों की तंद्रा उमँग रही है, उन्मादिनी मंद्रा विस्मृति का माधुर्य उफन आया है। यही चिर निलय है, आज आत्मजय हो रहा है। आज आत्मनिलय दिखाई दे रहा है। अब बीच का व्यवधान बनने को कोई रेखा शेष नहीं है, आज आत्मविस्मृति का आत्मअंतर्धान हो गया है, आज प्रलय में सृजन और सृजन में प्रलय हो रहा है, आज आत्मलय हो रहा है; आज सर्वास्ति सत्य का परिचय प्राप्त हो रहा है।

बृहद्रता के नेत्र बंद हो गये। आज ऐसा लग रहा है जैसे समस्त विश्व दूर से जगमगाते संजीवन वृक्ष की भाँति चमक रहा है। उसके विषादों को गोपद में से निकल कर ज्ञान का बालखिल्य पुकार रहा है।

तृप्ति पथ का प्रलोभन है, मृगमरीचिका है। दुःख सह कर यातना भर कर, हर्ष की आशा को जगा कर, पांथ डगर पर चलता है, न उसे शांति है, न डगर ही में तृप्ति मिलती है। श्रम अचिर है, पथ भी अचिर है, शांति की चिर प्यास मृत्यु है, निरत सुख निरत श्रम में है। तृप्ति श्रम है। रूप पाश है, भुजाओं में बाँधते ही वह मुक्ति है, नयनों में छिपाते ही वह भक्ति है। दूर की झिलमिल आज स्वर बनकर प्रत्येक निविड़ के जाल को भेदती चली जा रही है।

किन्तु सनगा के सामने नया दृश्य था। शोणकेतु ने उसके माथे पर झूलती तल को पीछे करके कहा—यह यह सोने का समय है ?

'नहीं', सनगा ने मुस्करा कर कहा, 'यह समय मध्यान्ह का है न ! काम करने का है ?'

उसको खीझते देखकर शोण ने प्रसन्नता से उसको भुजाओं में घेर कर कहा—बुढ़िया ! जा तू भीतर सो रह। ठंडी वायु है। कहीं हड्डियाँ अकड़ न जायें।

वह हँसा और उसने उसे छोड़ दिया। सनगा ने प्राङ्गण में आकर देखा। मन विभोर हो उठा। शोण एक अधोवासक पहने था। गले में उत्तरीय था। इस समय वह कटि के ऊपर नग्नदेह था। उसकी देह साँचे में ढली हुई सी थी।

'कितनी मनोरम बेला है', शोण ने कहा, 'जब तक तुम नहीं मिली थीं, मैं श्रमण की बातों को सोचकर सारी रात प्रकोष्ठ में वंद होकर निकाल देता था, पर अब।' उसने आकाश को देखकर कहा—लगता है वर्षा होगी। इस समय नैॠती पर आनन्द होगा।

'यहाँ तक लहरों की फुंकार सुनाई दे रही है।'

'पवन कितना शीतल है !'

'चलो।'

कुछ समय बाद जब बाँसुरी बज चुकी, तब नृत्यध्वनि सुनाई देने लगी और आधी रात के कुछ समय बाद लोग जाग उठे। धीर गंभीर संगीत ध्वनि नैॠती की प्रचण्ड धार पर से सुनाई देनें लगी। वह प्रचण्ड स्वर एक ओर नैॠती के निर्घोष पर गरजता, दूसरी ओर मेघों के लौह द्वार पर ठनठनाता हुआ महानगर के नगरहार तक जागरण फैलाने लगा।

महिषी शैखावत्या जाग उठीं। उन्होंने सुना। उन्हें अपने यौवन की स्मृति हो आई। संगीत और नृत्य सौवीरों की प्राचीन मर्यादा थी।

आकाश में अब बिजली झमझम नाचने लगी थी। इस समय नैऋ'ती की प्रवहमान गरजती हुई विस्तृत जलराशि के थपेड़ों में अनेक नौकाओं का समूह था और अनेक सौवीर और सौवीरियाँ बलपूर्वक पतवारों की चोट से उस सहस्रफणा धारा को बार-बार व्याकुल कर उठते थे। इस समय तरुण-तरुणियों के हाथों का कौशल देखने योग्य था। वे कटि के नीचे कच्छ लगा कर अधोवासक कसे थे और ऊपर तरुणों के दृढ़ वक्ष और तरुणियों के पीन स्तन श्वास के साथ फूलते और गिरते। उनके हाथों के वलय कभी-कभी पतवार से टकरा कर बज उठते। यौवन के फूटते हुए गंभीर स्वर-छाप छोड़ रहे थे। उनके केश फहरा रहे थे। तरुणियों ने जूड़े उठा कर ऊपर बाँध रखे थे। चलती हुई पतवारों की छपक-छपक ध्वनि से फेनिल जल फूत्कार करने लगा था। अंधकार जल की विक्षुब्ध धारा पर फैलकर झूमचूम कर रहा था। जब बिजली कौंधती तो पुलिन पर के नीले कछार, वर्षा से भींग कर, टीलों के से दिखाई देते। विस्तृत जलराशि एकदम जगमगा उठती, तब वे नौकाएँ एक रेखा सी दिखलाई पड़तीं।

आकाश में मेघ गरजा। जल पर गंभीर स्वर उठा—आई वर्षा! आई वर्षा!

और तब अन्यों ने गाया—आई वर्षा......

अभी उन्होंने स्वर को पूरा भी नहीं किया था कि स्वर उठा—पतली-तीखी आवाज ने मोटे स्वर को पकड़ लिया......मन हर्षा......ऐ रे आज सौवीर देश हरषा......

उस समय कुलों के तरुणों और तरुणियों ने यौवन के उद्दाम स्फुरण से गाया—

ऐ रे आज आज सौवीर हरषा......

और जब वह पतला और मोटा स्त्री-पुरुष का समवेत स्वर फैलता चला गया, सौवीर भूमि गूँजने लगी और अंधकार में मृदंग रव सुनाई दिया और नैर्ऋती के भँवर मारते स्वर को पकड़ कर बजने लगा तब आकाश में कौंध झपकने लगी और धरती और जल पर से सौवीरों के तरुण-तरुणियों ने गाया......

अंबर में गूँज उठा घोर घोर घोर नाद......
करका प्रचण्ड ध्वनि करे, रुद्र उठे नाच......
आई वर्षा......

फिर नावों पर झूमता हुआ वह टकराता स्वर मेघों को विक्षुब्ध करके जल की तुंगराशि पर ऐसे मचला जैसे विजयिनी सेना के उन्मत्त अश्व ने हिनहिनाकर रणभूमि से उठते ववंडर को कुचल दिया और युवतियों ने अपने वक्ष तान कर अजस्र साहस से गाया......

भीम भीम भीम विकराल अंधकार भीम......

वह तीखा स्वर डोला ही था कि शोणकेतु ने पूरी शक्ति लगा कर कहा—किन्तु सौवीर भूमि वज्र और है असीम !

और सब स्वर पहले से भी कहीं कठोर और दिग्गजों को हिला कर पुकारा कि गरजती आँधी सा उठा और ललकार बनकर धारा के वक्ष से टकराता बार-बार उठने लगा, ऐसा कि नैर्ऋती का प्रचण्ड भीषण निनाद, आकाश का गंभीर गर्जन और मृदंगरव सब उस तरुण स्वर से दब गये, जिसे बार-बार गाया गया......

किन्तु सौवीर भूमि वज्र और है असीम......
आई वर्षा......

अब जैसे आकाश में इन्द्र ने वज्र चलाया। मेघ वृत्रासुर की भाँति अंगार-पुच्छ पटक कर चिल्लाने लगे। एक रज्जुपाश में बँधी नौकाएँ किनारे की ओर चल दीं। शोण ने अपनी नौका तीर से बाँधी और

तरुणी और तरुण जल में कूद-कूद कर किनारे की ओर तैर कर गाते हुए बढ़ चले......

आई वर्षा......

ऐ रे आज सौवीर देश हरषा......

× × ×

प्रावृट की व्यथा अथाह थी। सनगा के उस दिन के प्रश्न ने उसके हृदय में हलचल मचा दी थी। तब से सबमें एक खिंचाव है। सनगा मिलती है, अपनापन दिखाती है, सब वैसा ही लगता है, परंतु कुछ अभाव कहीं है अवश्य जो तृप्ति के जल में कंकड़ की भाँति गिरकर असंतोष की लहरें उठाता जा रहा है। महिषी को वह बात ज्ञात नहीं हो सकी क्योंकि शोण, सनगा और वृद्धद्वती तीनों इस विषय पर चुप रहे। वृषकेतु को तो ज्ञात ही नहीं था। प्रावृट की चिंता का यह एकांतिक भार उसके विरुद्ध पड़ गया। गन्धकाल को समय मिल गया।

गन्धकाल इस विजय से मन ही मन विक्षुब्ध था। चतुर व्यक्ति था अतः उसने धारा को रोका नहीं था, परंतु उसका स्वार्थ इसमें नहीं था कि वह बहता चला जाये। गणों का राज्य हुआ था। सत्य है। परन्तु ये गणस्वामी अपने दासों से खेती कराते थे, उन्हें अमानुषिक दुःख देते थे। दास समस्त गणों में छाये हुए थे। बाजारों में उनका क्रयविक्रय होता, घरों में होता और दासों पर चढ़ी थी श्रेणियाँ, परन्तु श्रेणियाँ भी क्षत्रियों के लिये भयद थीं।

शिपिविष्ट जैसे लोग इस सबको समझ नहीं पाये थे। गन्धकाल तो जानता था। परंतु इस गण व्यवस्था से गन्धकाल को भय क्यों था? कहते थे, पहले सब समस्त गण समान था। वह दिन तब बीते जब शक्ति कुछ ने सँभाली। क्षत्रिय और ब्राह्मणों में निरंतर संघर्ष रहा। उस गण ने राजा चुना! परंतु वह पहले समिति के अधीन था। वह दिन गये, राजा निरंकुश हुआ। और सब पर जब वह हावी हो गया, तब गणकुलों

ने उसे उठा कर फेंक दिया और अपना राज्य बनाया। परंतु गण में समस्त कुल समान हैं, सब भूस्वामी हैं। गन्धकाल कुलों की यह समानता नहीं चाहता था। बहुत से कुलों ने दासों का व्यापार करके संपत्ति एकत्र की है, वे कुलीन हैं, पर कुलीनों की परंपरा में तो नहीं पले हैं।

तभी क्रोष्टेय वृजिनीवान् ने आकर कहा—देव!

आँख उठाकर देखा।

'देव! संवाद बहुत बुरा है।'

'क्या कहा?' गन्धकाल चौंका।

'देव! दासों ने आभीरों के लिये विद्रोह कर दिया है। दूसरे लोग कहते हैं, वे स्वतंत्र होना चाहते हैं। तीसरी बात है कि श्रेणियों और दासों का नगरहार में युद्ध प्रारंभ हो गया है।'

गन्धकाल ने सुना। वह कुछ नहीं बोला। जब क्रोष्टेय चला गया तब वह वक्ष पर हाथ बाँध कर घूमने लगा। घूमने लगा। आज उसके मन में हलचल मच रही थी। अब यह अर्द्धनग्न दास इतना गर्व करने लगे हैं। आभीरों ने एक दासी पुत्री को रानी बनाया था, इसका उन्हें खेद है, दूसरे तो दास ही नहीं रहना चाहते!

गंधकाल का एक बार भी दासों की दुर्दशा की ओर ध्यान नहीं गया। वे जब चाहे, वध किये जा सकते थे। उन्हें पशु से भी बुरा और नीचा समझा गया था। परन्तु गन्धकाल को याद नहीं कि कब से यह होता आ रहा है। वह लिच्छवियों में गया था तब वहाँ उसने देखा था कि दासों से खदानों में काम लिया जाता है और भूस्वामी कुलराजा असीमित धन प्राप्त करते हैं। वे गङ्गा के द्वारा दूर-दूर तक व्यापार करते हैं और सुन्दरियों का भोग करते हैं। लिच्छवि तो कोमल-हृदय हैं। प्राचीन काल में, कहते हैं, विराट नगर का राजा मनुष्यों का सिंहों, व्याघ्रों, हाथियों से युद्ध करवाता था। ब्राह्मण श्रुतश्रवा जब महानगर आया था तो उसने सुनाया था कि भीमसेन जब बल्लव बन कर रहा था तो उसे पशुओं और

मल्लों से युद्ध करना पड़ता था। दास प्रथा का वह क्रूर स्वरूप अब कहाँ है? न जानें कब वह सब बंद हो गया। परंतु वह सब रहा अत्यंत उत्तेजक ही होगा।

गन्धकाल ने सोचा, क्या ही अच्छे रहे होंगे वे दिन! आज दास कहते हैं कि वे भी समान हैं। फिर ध्यान आया, यह समस्त राष्ट्र, यह गण केवल दासों के बल पर ही तो जीवित हैं। यदि दास ही कुचले नहीं गये तो सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। उस दिन की कल्पना करके गन्धकाल का मन थर्रा गया। किन्तु, उसने मन ही मन कहा—एक ही बात अच्छी हुई है कि दासों और श्रेणियों में युद्ध हो रहा है। क्यों? क्योंकि श्रेणियों को सस्ता पड़ता है दासों से काम कराना। परन्तु गन्धकाल को चिन्ता हुई। दासों को यह पशुओं की भाँति पालने की बात श्रेणियों को तो रुचिकर नहीं। वे चाहते हैं कि जितना काम हो, उतना ही धन दे दिया जाये। और गन्धकाल ने सोचा।

कहते हैं, यादव गण में दास प्रथा कौरवों के राज्य के समान ही थी। और यादव वृष्णि कृष्ण का स्वप्न था कि वह समस्त आर्यगणों का शासन बनायें और एकतन्त्र न होकर गणतन्त्र स्थापित हो, जिसमें दासों को तो नहीं, हाँ शूद्रों को कुछ अधिकार मिलें। इसीलिये तो कहा है—मामेकं शरणंव्रज। केवल मेरी ही शरण में आ। सब कुछ छोड़ दे मेरी ही शरण में आ।

कितना बदल गया है सब कुछ! वे दिन कितने सुन्दर थे! क्या अब वे नहीं लौटेंगे? लौटकर तो कभी भी कुछ नहीं आता!

और श्रमण का शिष्य, जो ब्राह्मणों का विरोधी था, कोई नई चाल सोचने के लिये उद्यत हो गया। क्यों न प्रावृट को वहाँ भेजा जाय? यह सोचते ही वह जाकर प्रावृट से बोला—आर्य! भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया है।

'सुन चुका हूँ,' प्रावृट ने कहा, 'यह गृहयुद्ध है। और इसका परिणाम गणनाश करेगा।'

'आर्य ! ऐसा न कहें', गन्धकाल ने ऐसे कहा जैसे वह इस बात को सुन भी न सकेगा, जबकि हृदय में एक नई स्फूर्ति छा गई थी।

'कहने न कहने से क्या है आर्य !' प्रावृट आगे बढ़ा, 'दासों और श्रेणियों का युद्ध क्या इतने में ही सीमित रह जायेगा। मुझे उसकी लपटें फैलती हुई स्पष्ट दिखाई दे रही हैं।'

गन्धकाल ने कहा—देव ! इसी की तो मुझे भी चिंता हो रही है। बड़ी कठिनाई से तो आज गण ने सिर उठाया है ! उसने दीनता से देखा।

वृद्ध प्रावृट ने कहा—तो आप डरते हैं आर्य ! दासों और श्रेणियों का युद्ध असाधारण है अवश्य, परन्तु जहाँ तक मैं सोचता हूँ, यह व्यर्थ है। दासों के वास्तविक प्रभु श्रेणियों के संघ नहीं, श्रेष्ठि हैं या भूस्वामी। श्रेष्ठियों की तो इच्छा है दासों का बोझ उठाना न पड़े। परन्तु भूस्वामी चाहते हैं दासों को पहले की ही भाँति कुचले रखना। जानते हैं क्यों ? वे चाहते हैं कि यह नया-नया गण उलट जाये और इसका भय मुझे भी है क्योंकि पहले के गण में केवल भूस्वामियों की शक्ति थी, जब कि नये गण में बहुत से ऐसे धनिक भी आ गये हैं जो कल तक नितांत दरिद्र थे। उनमें से कितने ही तो दासों और सुन्दरियों का व्यापार करके धनवान हो गये हैं। कुलीनों और उन नये धनिकों में घोर विद्वेष है।'

गन्धकाल सुनता रहा। उसे लगा, उसका सारा खेल फिर नष्ट हो जायेगा।

'तो फिर ?' उसने कहा, 'क्या करना होगा ?'

वृद्ध प्रावृट ने सिर उठा कर उसकी ओर कुछ देर तक देखा और तब कहा—मैं जाऊँगा आर्य !

'कहाँ ?'

'जहाँ आग लग रही है।'

'देव ! वहाँ क्या होगा ?'

प्रावृट ने उत्तर नहीं दिया। वह कहीं और देख रहा था। गन्धकाल समझा नहीं। उसने मुड़कर देखा। .देखकर उसके मुख पर मुस्कराहट फैली। वृहद्वती आ गई थी।

'प्रणाम आर्य !' वृहद्वती ने कहा।

गन्धकाल ने कहा—आयुष्मती हो वत्से! कल्याण हो। तुम्हारा सौभाग्य अचल रहे।

'आर्य !' वृहद्वती ने फूत्कार किया।

'क्यों ?' गन्धकाल ने अबूझ बनकर पूछा।

'जानते हैं मैं ब्राह्मणी हूँ !'

'देवी !' गन्धकाल ने कहा, 'यह तो गण को नष्ट करने की बात है। इस समय यदि ब्राह्मण क्षत्रिय विद्वेष फैल गया तो......'

प्रावृट ने रोककर कहा—पुत्री! तुम जाओ! देवी शैखावत्या को सूचना दे दो कि मैं नगरहार जा रहा हूँ।

'क्यों पितर !' पुत्री ने पूछा।

'मुझे वहाँ जाकर प्रजा को समझाना है।'

वृहद्वती से पैङ्ख्या, सुमल्लिक दास और सैरन्ध्री मुक्तवेणी तथा ओघवती से घिरी महिषी शैखावत्या ने जब यह संवाद सुना तो पुकारा—शैलाभ !

दास नहीं था। पता चला, भाग गया। महिषी आश्चर्यचकित रह गई। वृद्ध सुमल्लिक ने खाँस कर कहा—माता! जब प्रभुवर्ग को ही शासन में ढील देना भाता है, तो दास क्यों दबेगा ? दास तो कुत्ता नहीं जो स्वामिभक्त हो, नया समय है तभी इतना पाप एकत्र होता जा रहा है। इस संवाद को शोणकेतु ने भी सुना। सुना सनगा से। परन्तु वह समझ नहीं पाया। कहा—तो पितृव्य वहाँ जाकर क्या कर लेंगे ?

सनगा ने कहा—शांति स्थापित करेंगे।

'टपकते रुधिर को शांति समझायेंगे ?'

'तुम तो श्रमणों के शिष्य हो। फिर अविश्वास क्यों?' सनगा की चोट बैठी। शोण राजमहिषी शैखावत्या के पास गया तब भी यही बात चली। धीरे-धीरे यह संवाद महानगर में फैल गया। गणागार में विवाद छिड़ गये। प्रावृट के जाने के बाद वृषकेतु का मन उच्चाट हो गया। वह नगर में घूमता रहा। उत्तर के खश व्यापार करते हुए यहाँ आये थे, कुलगणों के सदस्यों का वैभव देख कर वे चकित हो गये थे। खशों में तक्षण की सोने की खदानों से सोना आता था। संस्थागार की ओर गया तो नये-नये गण सदस्यों का वैभव देखा। वृषकेतु को कोई आनन्द नहीं आया, जाने क्यों ऐसा लगता था कि यह सब है, पर है कुछ नहीं।

वह एक वृक्ष के नीचे खड़ा होकर कुछ स्त्रियों की भक्ति-भावना भरी चैत्य पूजा देखता रहा। अनेक आर्य स्त्रियाँ भी लांगूल महादेव की पूजा करने लगी थीं। उधर वाम भाग के उपवन में एक साधु रहता था जो दिन-रात पुरानी हड्डियाँ एकत्र किया करता था। सब उसे महायोगी कहते थे। उसके पास महानगर के अनेक आर्य भी आते थे और उससे दीक्षा लेते थे। घूमते-घूमते वृषकेतु नगर की उपसीमा में पहुँचा।

वृषकेतु ने श्मशान में देखा कि प्रचण्ड वेशधारी कालभैरव की मूर्त्ति उपस्थित है। वह वहाँ भी रुका नहीं। मरने की यह जिज्ञासा उसमें क्यों हुई? तपोवनों की ओर जाते हुए उसने देखा, उनकी श्री उजड़ गई थी। आश्रम सूने पड़ गये थे। ब्राह्मण दरिद्र हो गये थे और अब वे न उतने दास रख पाते थे, न शिष्य, जो आश्रम चलते रहते। एक दिन था जब कहते हैं, इन्हीं का प्रभुत्व था। जैसे-जैसे क्षत्रियों ने ज्ञान-क्षेत्र में पदार्पण किया और दान देना कम किया, क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की शक्ति का ह्रास कर दिया। वृषकेतु सोचता रहा। बृहद्वती के प्रति संचित स्नेह उमड़ आया। सनगा भी याद आई। अच्छी लड़की है। शोण के प्रति अनुरक्त है। अच्छा ही है। फिर बृहद्वती का स्मरण हो आया।

सचमुच उसी दिन एक और घटना घटी। शोणकेतु को वन की सीमा पर एक नरवलि देता कापालिक मिला। शोण ने उसे रोकने की चेष्टा की किन्तु वलि दी जा चुकी थी। उसका हृदय आवेश में था। जव वह लौटा तो और ही बात सुनी।

सनगा ने कहा—बृहद्वती ने आर्य गंधकाल को भी डाँट दिया।

'क्यों ?'

'देव ! वे ब्राह्मणी हैं, हम तो क्षत्रिय हैं न ?'

'किन्तु यह गण है। यहाँ ब्राह्मण के अधिकार हैं ही कहाँ ?'

'नहीं होंगे, किंतु वे तो ब्राह्मणी हैं ही।' उस दिन जो सनगा पर बृहद्वती हँसी थी, वह क्रोध काँटा बन कर सनगा के भीतर गड़ गया था।

शोण ने होंठ काटा।

महानगर में मूर्त्ति बन रही थी। सायंकाल गण का परिषद् बैठा भूस्वामी और गण सदस्य आने लगे। शोण अपने आसन पर जा बैठा। गण सदस्यों का अपार वैभव था। वे प्रायः हिरण्य वस्त्रों में सज्जित थे। उनके मुखों पर गर्व था और न जाने क्यों शोण को वह अच्छा नहीं लगा। उन्हें देखकर वह मन ही मन जल उठा। उसे वह दिन याद आ रहा था जब वह राजकुमार था और यह सब ही उसके सामने नतशीश खड़े रहते थे। उनके उठते सिरों में उसे अपने विरुद्ध षड्यंत्र सा दिखाई दिया, जैसे वे सब उसे चिढ़ाने के लिए ही इतने मद से चलते हैं, बात-बात पर होठों के कोने मोड़ कर मुस्कराते हैं। उसके मन में आया, वह दो-एक की हत्या कर दे। वह मन ही मन इतना उत्तेजित और आवेशित था कि वह परिषद् के कार्य को भी ध्यान से नहीं सुन सका। इतना अवश्य प्रगट हुआ कि वे सब प्रावृट के सम्मान में मूर्त्ति बनाना चाहते हैं।

आर्य गन्धकाल ने चलते समय एकांत देखकर परख की—कुमार ! परिषद् का वातावरण देखा ?

शोण समझा नहीं। कहा—यह सब लोग पहले तो इतने सिर नहीं उठाते थे।

'अब तो भूल मालूम हुई ?' गंधकाल ने कहा और चला गया। शोणकेतु को लगा, वह हृदय से तप्त लौह छुला गया। तो क्या सब व्यर्थ था ? यह क्या हुआ ? प्रजा को तो अभी कुछ प्राप्त नहीं हुआ ? दास दास हैं, श्रेणिक श्रेणिक हैं। केवल यह साधारण कुलों के क्षत्रिय अधिकार और धन प्राप्त करके नहुष की भाँति मदांध हो गये हैं। गन्ध-काल ! कहाँ गया वह ?

शोणकेतु उस दिन इतना चिंतामग्न लौटा कि उसने सनगा को भी नहीं देखा। परन्तु एक बात फिर मन को चुभी। जब वह चला तब किसी ने नहीं पूछा कि तुम जा रहे हो, या ठहरोगे ?

इतना अपमान ? वह, जो स्वयं राजपुत्र है ! उसका ?

× × ×

गम्भीर निनाद करके घण्टा बजने लगा। क्रोष्टेय वृजिनीवान् ने बार-बार उसकी रस्सी को खींचा और फिर तुमुल रोड़ दिशाओं में फैलने लगी जैसे उस ऊँचे भवन से अब स्वर पक्षियों के झुण्ड बनकर निकलता आकाश में दिगंत तक चला जाता। महानगर की वीथियों में वह स्वर सांध्यतिमिर बन कर मँडराने लगा और प्रासाद के प्रहरियों की भाँति दीपक अब आँखें खोलकर सन्नद्ध होने लगे।

वृद्ध प्रावृट ने ग्राम प्रान्त के छोटे घर में बैठते हुए कहा—नरिष्यंत !

'देव !' सामने के एक वृद्ध ने कहा। उसका नाम था नरिष्यंत। वह एकांत का आदी था। उसके गालों पर श्याम छाया थी, और बीता यौवन उसके अभाव को छलक के स्थान पर पोल की प्रतिध्वनि दे रहा था। देव मंदिर में घण्टे बज रहे थे। अगरु लहरियाँ वहाँ से बहकर यहाँ तक आ रही थीं। चोल दासी पटच्चरा बाहर द्वार पर बैठी थी। वह निषध देश में ली गई थी। वह स्वयं बताती थी कि उसको यह याद नहीं कि

कब चोल देश से आई थी, पर जब उसकी माँ का देहान्त हुआ था तब वह विदर्भ देश में थी। नरिष्यंत ने उसे सेवा करने को रख लिया था। पड़ोसी बलाहक नाग और उसकी स्त्री धूमिनी से पटचरा की अच्छी बातचीत थी।

वृद्ध नरिष्यंत ने मुख पर हाथ फेरा। उस पर रेखाएँ ऐसी लगती थीं जैसे यौवन इस शैय्या पर सोकर उठ चुका है, अब इस शैय्या को छोड़कर चला गया है और यह रेखाएँ, उस पर पड़ी सिलवटें रह गई हैं।

'आज क्या संवाद है?' प्रावृट ने कहा।

माधवीकुंज पर कोई रात्रिपक्षी बोला। नरिष्यंत ने इधर-उधर की आहट लेकर कहा—आज क्षत्रियों ने श्रेणियों को शस्त्र बाँटे हैं।

'क्यों?' प्रावृट ने कहा।

'देव, यह नहीं, समझ में नहीं आने वाली बात है। पर यह सत्य है।'

वृद्ध ने कहा—बहुत कुछ जो सुनते हो, वह निस्संदेह ही सत्य हो, इसका तो कोई विश्वसनीय कारण नहीं दिखाई देता।

'परन्तु देव! आज भूस्वामी आकर एकत्र हुए थे।'

'उसका दूसरा कारण भी हो सकता है', प्रावृट ने कहा, 'आज सौवीरों पर क्या कम विपत्ति आई है। भूस्वामी अब भी अपनी शक्ति को अक्षुण्ण बनाने के लिए अनेक प्रकार के कुचक्र चल रहे हैं। वे तभी श्रेणियों और दासों को लड़ा रहे हैं।'

'तो क्या गणों को कुछ नहीं चाहिये?'

'रक्तगर्व ही इस शत्रुता का मूल है नरिष्यंत', प्रावृट ने कहा। वह धीरे से हँसा, पर हँसी गले में ही घुट गई, जैसे पेट के अन्दर कोई हँसा तो काफी बल लगा कर, किन्तु वह ध्वनि बाहर नहीं आ सकी।

'मैं नहीं समझा', नरिष्यंत ने कहा।

'वह पारस्परिक वैमनस्य है,' प्रावृट ने कहा, 'परन्तु वह बाह्य कारण है नरिष्यंत। यह केवल दिखनेवाला कारण है। इसका भीतरी रूप दूसरा है। सौवीर-शक्ति क्षीण होती जा रही है। पहले हम गण को ही सर्वोपरि मर्यादा देते थे। अब ऐसा नहीं है। अब धन को ही सबसे अधिक मर्यादा दी जा रही है।'

'तो क्या सब सौवीरों का यही होना था', नरिष्यंत ने उदासी से पूछा।

'सौवीर!' प्रावृट ने कहा, 'गण के क्षत्रिय भी मदांध हैं। और यह वैमनस्य, यह युद्ध......'

'वह मैं जानता हूँ आर्य,' नरिष्यंत ने कहा, 'किन्तु आज सौवीरों में पिता-पुत्र का संबन्ध तक धन से निर्णित है। यक्षों और शिव के उपासकों का एक विराट प्रभाव पड़ रहा है। जिस दिन मगध के राजा जरासंध ने यज्ञ किया था उसी दिन आर्य अनार्य का भेद लुप्त होने लगा था। देव! क्या होने वाला है? अब तो अनार्य भी वर्ण बदलने लगे हैं।'

'वर्ण!' प्रावृट ने कहा, 'नहीं नरिष्यंत! वे आर्यों के वर्णों में घुस रहे हैं, क्योंकि आर्य अब आर्य नहीं रहे।'

वह व्यंग्य से हँसा। यह हास्य एक दूसरी घुटन थी, जैसे सौवीरों में पीढ़ी दर पीढ़ी हँसी का स्थान घुटन लेती जा रही थी।

'संपत्ति!' नरिष्यंत ने सिर हिलाया।

'आर्य शासक!' प्रावृट ने कहा, 'समस्त अनार्य शासकों से मेल कर रहे हैं। जानते हो आज रक्त से भी बढ़ कर स्वार्थ हो गया है। आज दरिद्र आर्य और दरिद्र नाग की समस्या एक सी हो गई है। दास तो सारी मर्यादा को ही तोड़ देना चाहता है। और......'

वृद्ध प्रावृट सोचने लगा। नरिष्यंत की साँस का शब्द सुनाई देने लगा। कुछ देर दोनों चुपचाप बैठे रहे जैसे निस्तब्धता से सिकुड़ते और फैलते हाथों को वे देख रहे थे, जो एक क्षण में अपनी उँगलियों में सब

कुछ भर कर निचोड़ देना चाहते थे और दूसरे ही क्षण जैसे उन उँगलियों से सब कुछ निकल जाता था। वृक्षों की काली छायाएँ अब स्पष्ट हो गई थीं क्योंकि आकाश में एक कटीला चंद्रमा अपना मंदिम वैभव प्रकट करता हुआ अन्धकार पर ऐसे चढ़ आया था जैसे भीम वटवृक्ष पर कोई श्वेत पक्षी आ बैठा हो। रजनिगंधा की मादक गंध आती थी किंतु उन दोनों को इस पर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं था।

जब नरिष्यंत चला गया तब प्रावृट घोर चिन्ता में पड़ गया।

बाहर नरिष्यंत ने सरोवर में मुँह धोकर जल पिया और फिर सुस्थिर होकर वह चला गया।

वृद्ध प्रावृट आज जीवन के एक नये मोड़ पर आ गया था और मन ने पूछा था—अब किधर?

× × ×

आर्य शिपिविष्ट प्रासाद की दीर्घछाया में धीरे-धीरे बढ़ चले। इस समय वे अनेक बातें सोच रहे थे। विचारों की भीड़ पहले अधिक थी, जिनमें समुद्र की लहरों की भाँति विचार उठ कर एक दूसरे में मिल जाते थे। किन्तु फिर वे विचार भागने से लगे और उनकी गति स्वयं ही कुछ विक्षिप्त हो गई। क्या करेगा यह प्रावृट! ग्राम-ग्राम में घूम रहा है। वह क्या करना चाहता है? क्या वह सब कुछ शांत कर देगा? संसार में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक वे जो तूफान चाहते हैं नया निर्माण करने को उसके पहले विध्वंस करने। दूसरे चाहते हैं तूफान की भयानकता में अपना काम निकाल लेने को अर्थात् जब उन्हें शांति में अपने स्वार्थ की विभीषिका ढँकती दिखाई नहीं देती तब वे तूफान की भीषण प्रतिहिंसा में सब कुछ डुबा देना चाहते हैं। क्या प्रावृट इतना शक्तिशाली हो गया है? और वह क्या कर रहा है। उसके सामने कोई चिन्ता नहीं है। शिपिविष्ट सिहर उठे। उन्होंने देखा वे शोण के भवन के सामने आ गये हैं।

'आर्य भीतर हैं ?' वृद्ध ने कहा।

'दण्डधर ने ऊपर से नीचे तक भय से देखा और पुकारा—आनभिम्लाता !

एक श्यामला स्त्री आई। वह प्रतिहारी थी।

'क्या है अनूदर !'

'पेङ्ख्या से पूछ आर्य शोणकेतु क्या कर रहे हैं ?'

आनभिम्लाता ने कहा—आर्य स्वागत !

'क्या कर रहे हैं आर्य !' शिपिविष्ट ने बढ़ते हुए पूछा।

'देव ! आज कुछ वैश्य वणिक आये थे। आज वे न्यंकुमृग के शीश दे गये थे। आर्य उन्हीं को देख रहे हैं।'

शिपिविष्ट हँसा। कहा—चलो।

वह आगे-आगे चली, वृद्ध पीछे। शोणकेतु गृहवापी के पास ऐणेय जाति के मृगों और कारण्डवों से घिरा बैठा था।

शोणकेतु ने देखा। सादर उठ खड़ा हुआ। कहा—स्वागत आर्य, बुला नहीं लिया ?

'आ ही गया हूँ कुमार !' शिपिविष्ट ने कहा, 'ऐसा क्या निःशक्त हूँ जो अपने बालकों के पास भी चल कर नहीं जा सकता ? आकाश में वज्रगर्जन करने के पहले तो जल को भी जलना पड़ता है।'

शोणकेतु प्रभावित हुआ। उसे वह नम्रता अच्छी लगी। गण का अहंकार उसके मन को जितना कचोट गया था, उतनी ही यह विनम्रता उसे लगने लगी। वृद्ध ने फिर कहा—कुमार ! भूलिङ्ग पक्षी को जानते हो न ? वह साहसमांकुरु अर्थात् साहस मत कर, साहस मत कर, यही चिल्लाता हुआ उड़ता है, किन्तु वह स्वयं कितना दुस्साहसिक होता है, यह इसी से जान जाओगे कि वह सिंह की डाढ़ों में लगा मांस निकाल लाता है। कुमार ! ऐसे ही मुझे भी समझो। मेरी डाढ़ से भूलिङ्ग जैसे महाकाल ने न जाने कितने दाँत उखाड़ लिये, पर मैं फिर भी जीवित हूँ।

तुलना पूरी नहीं बैठी, पर वृद्ध हँसा। शोण भी।

दोनों बैठ गये।

'गण !' शिपिविष्ट ने कहा, 'सर्वोत्तम है कुमार! परन्तु उसमें एक कमी है।'

'क्या आर्य !'

'मर्यादा ! जानते हो ?'

'देव ! समझा कर कहें।'

'कसक को शब्दों में किसने व्यक्त किया कुमार !'

'आर्य ! कसक क्यों कहें ! अहंकार कहें न ?'

शिपिविष्ट के मन की बात हुई। कहा—नहीं कुमार ! समय आने दो। अभी तो सब कुछ उथल-पुथल में है। समय आने दो।

'समय ?' शोण चौंका।

'हाँ वत्स !'

'कैसा समय !'

'समय ?' वृद्ध ने कहा, 'अहेरी जब खेतों में शल्लकी को मारता है तब उसके काँटों से भयभीत होकर उसे हाथों से नहीं पकड़ता, उसके लिए दण्ड का प्रयोग करता है। हमें भी उसी प्रकार अपनी बुद्धि, और बुद्धि के साथ उसके कौशल का प्रयोग करना चाहिए।'

इस 'हम' शब्द में बड़ा रहस्य था। वृद्ध झुके। उनके हीरकजटित कंकणों पर दूर से आता प्रकाश तनिक चमका और वक्ष के मुक्ताहार आगे लटके से हिल उठे। उनके मुख पर कठोरता थी और उनकी आँखें और होंठ देख लगता था वे अत्यन्त करुण हैं।

निषाद पिता और वैदेही माता का आहिण्डक पुत्र दास लकुच कुछ दूर पर कार्यव्यस्त था। दूर पर बृहद्वती और वृषकेतु दिखाई दिये। इस समय बृहद्वती के लम्बे केश रूखे और खुले हुए थे। उसके सुन्दर और